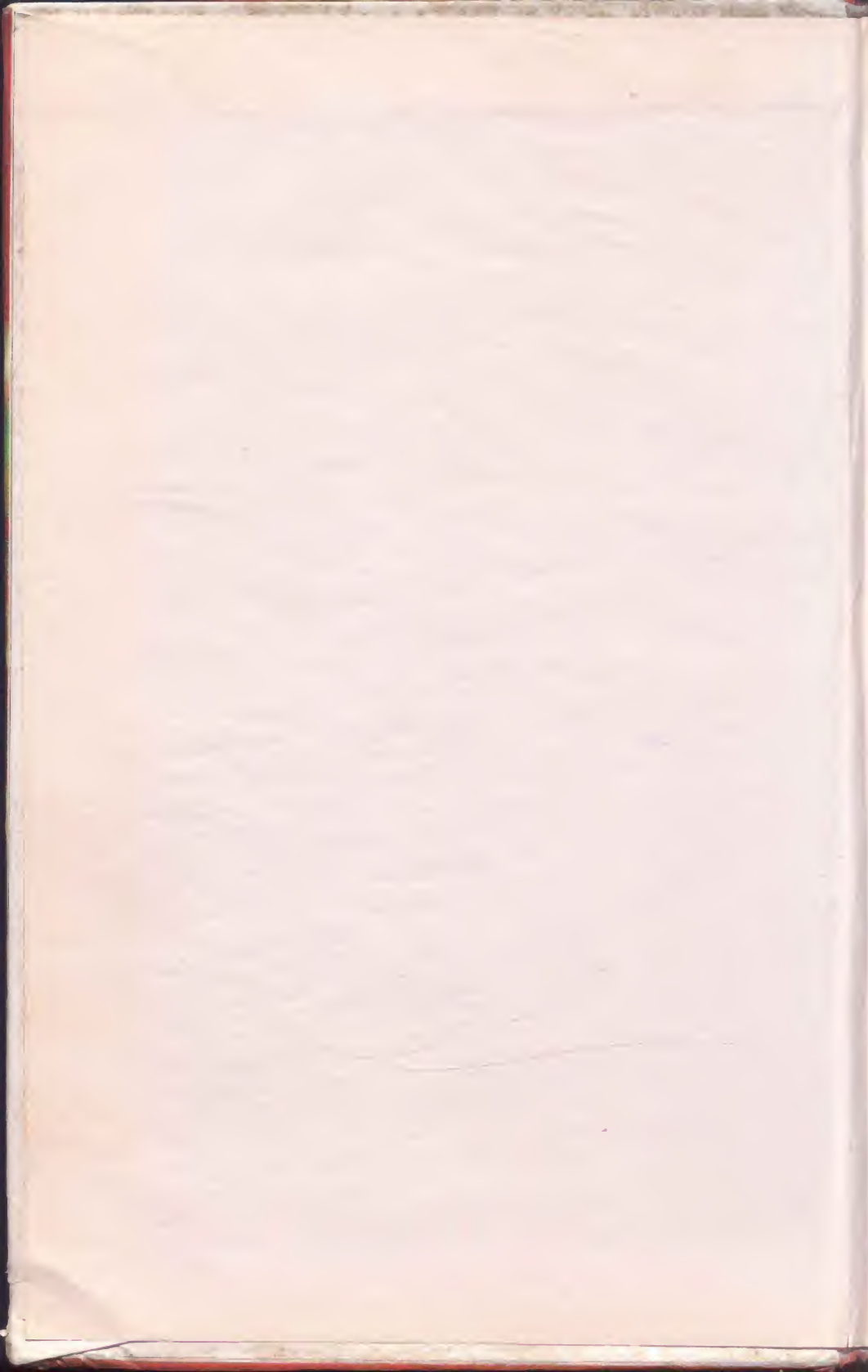


प्रायोगिक तंत्र

पं. गोविन्द शास्त्री







प्रामाणिक तंत्र वैज्ञानिक गोविन्द शास्त्री कृत
आदि विद्याओं का एक अद्भुद् दस्तावेज

प्रायोगिक तंत्र

संपादन
आचार्य अशोक सहजानन्द



मेघ प्रकाशन
दिल्ली-110006

- ☐ विलुप्त हो रहे प्राचीन एवं अधुनातन मौलिक साहित्य को विश्वसनीय रूप में प्रकाशित करने के लिये प्रतिबद्ध।
- ☐ पाठकों की रुचि का संस्कार एवं स्तर निर्माण करने के लिये मार्गदर्शक ग्रंथ प्रस्तुत करने के लिये समर्पित।
- ☐ देशगत किंवा जातिगत आग्रहों व व्यामोहों से मुक्त रहकर विश्वजनीन शाश्वत मूल्यों को प्रेरणा देने वाले चिंतन को प्रसारित करने के लिये संकल्पशील।
- ☐ स्वस्थ परम्परा और उदात्त आचार-व्यवहार को स्थापित करने के लिये एक शालीन प्रयास की ओर अग्रसर-

मेघ प्रकाशन

239, दरीबा कलां, दिल्ली - 110006

दूरभाष : 23278761, 55278761

ई-मेल : Email : megh-prakashan@rediffmail.com

द्वारा प्रकाशित

संस्करण : 2005

मूल्य : 100 रु.

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित

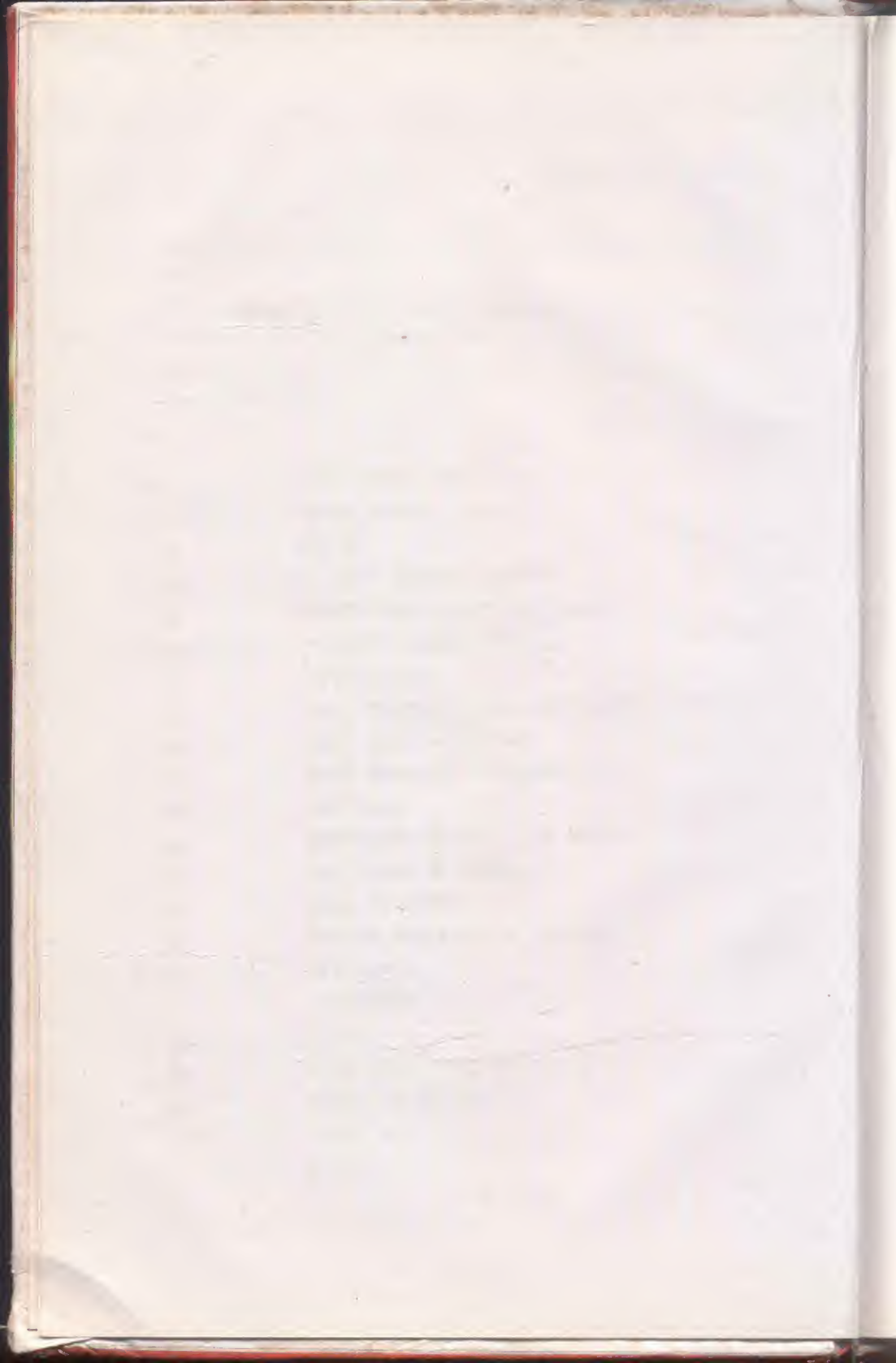
आवरण सज्जा : स्वाति अकादमी, दिल्ली-110006

मुद्रक : अरोड़ा आफसेट, दिल्ली - 110006

I.S.B.N. No. 81-7277-015-4.

अनुक्रम

कुछ आवश्यक निर्देश	5
शास्त्रीय व्यवस्था	12
मंत्र दोष	21
अक्षरों का तत्त्वानुसार वर्गीकरण	27
अक्षरानुसार राशि वर्गीकरण	28
अक्षरों का नक्षत्रानुसार वर्गीकरण	29
काकणी विचार	30
मंत्र का सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध अरि विचार	32
मासों के फल/ तिथि विचार	35
षट् कर्मानुसार, ऋतु कालादि विचार	36
साधना विधि	40
मांत्रिक प्राण प्रतिष्ठा की संक्षिप्त विधि	68
उत्कीलन की सामान्य विधि	70
मंत्रत्याग की पद्धति	71
शाबर मंत्रों को जाग्रत करने की विधि	73
पूजा रहस्य	74
वैदिक प्रयोग	76
नित्यकर्म	87
षट् कर्म का सामान्य विधि विधान	95
कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग	109
प्रेत साधना	116
गड़ाधन	121-126



कुछ आवश्यक निर्देश

संसार में छः का महत्त्व बहुत अधिक है। छः की इस महिमा को देखकर यह लगता है कि यह आयाम प्रकृति की शैली है। इसका तात्त्विक आधार भी है। सृष्टि की प्रक्रिया में शिव और शिवा, मूल तत्त्व हैं इनके त्रिकोणात्मक रहने से $3 \times 2 = 6$ या $3 + 3 = 6$ की अभिव्यक्ति अत्यन्त प्रखर हो गई है। तन्त्र ने छ को दो अर्थों अतएव दो रूपों में लिया है। वहिर्मुखी अतएव स्थूल आयामी छः हमारे देह का निर्धारण करता है वैसे ही तन्त्र के भी षट्कर्म होते हैं जो प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप में इसी देह के इतस्ततः घिरे रहते हैं। सूक्ष्म अतएव अन्तःकरण के षडंग जिन्हें हम षट्चक्र भी कहते हैं उनका भेदन व्यक्ति को पारमार्थिक सिद्धि प्रदान करता है।

संसार को उत्तेजित एवं परिचालित करने वाले काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य आदि छः दोष ही षट्कर्म के नाम से प्रचलित मारण, मोहन, आकर्षण, वशीकरण, स्तंभन विद्वेषण के प्रेरक बनते हैं। मूलतः संसार विकार प्रधान है और उसकी प्रधानता में षट्कर्म तन्त्र के लिये विचारणीय बन गये हैं। इनसे हमारे जीवन में आये अवरोध दूर होते हैं। माना, हम शान्तिप्रिय हैं किन्तु हमारे निकट रहने वाला क्रूर और युद्ध प्रिय है, वह हमें अपने जैसा बनने के लिये विवश कर देगा। यह हमारे युग, परिवेश एवं जीवन की विडम्बना ही समझी जाय कि इन निन्दित कर्मों को करने के लिये बाध्य हो जाते हैं।

अभिचार कर्म करने के लिये शास्त्र ने निषेध किया है किन्तु परिस्थिति की जटिलता के कारण इनको करने आज्ञा भी दी है। हमें यह विश्वास रखना चाहिए कि जिस प्रकार लोक में, मारण, उत्पीड़न आदि कदाचार के लिये दण्ड विधान है उसी प्रकार परलोक की अदृश्य व्यवस्था में भी ऐसे अपकर्मों के लिये दण्ड देने की व्यवस्था है, इसलिये जब तक बाध्य न हो जाएं तब तक शास्त्र का एतन्निमित्त प्रयोग न किया जाय। मारण जैसे कर्म में पहले प्रायश्चित्त और आत्मरक्षा करने का विधान बताया गया है।

सामान्यतः ये षट्कर्म सम्बद्ध व्यक्ति को ही करने चाहिए किन्तु यदि अशिक्षा, अस्वस्थता, व्यस्तता वा अन्य कारणों से स्वयं नहीं कर सकते तो किसी अन्य से करा लेने में कोई आपत्ति नहीं है। इसके लिये शास्त्र ने दोनों ही व्यक्तियों के लक्षण व शर्त बतलायी हैं।

जो करेगा, उसके लिये कहा गया है कि संस्कारित विधि-विधान को पूरी तरह जानने वाला, सन्तोषी, पवित्र रहने वाला, इन्द्रियों को वश में रखने वाला, क्रोधहीन, अभिमान रहित और क्षुब्ध न होने वाला हो।

इस प्रकार के काम करने के लिये व्यावसायिक व्यक्ति को न चुना जाय। कार्य में निष्ठा और देवता में अनन्य भक्ति रखने वाला उपयुक्त रहता है। उपरिर्णित लक्षण उस साधक के लिये भी आवश्यक हैं जो स्वयं करता है।

किनके लिये अनुष्ठान करें

जो व्यक्ति दूसरे के लिये काम्य करता है उसे भी शास्त्र ने समझाया है कि वह राजा, राजा का पुत्र, धनिक, न्याय मार्ग से धन कमाने वाले के साथ-साथ आस्तिक, भक्त, कृतज्ञ, अपने गुणों के कारण श्रेष्ठ, गुरु और देवता का पूजन करने वाले, शील सम्पन्न व्यक्ति के लिये नैमित्तिक अनुष्ठान करना चाहिए। भय से अथवा धन के लोभ से प्रेरित होकर दूसरे के लिये प्रयोग करने वाला व्यक्ति पतित हो जाता है। उसका किया हुआ प्रयोग फलता भी नहीं।

जो व्यक्ति स्वयं कोई प्रयोग करता है या किसी दूसरे के लिये करता है, वह साधक कहलाता है। साधक के स्वभाव में सद्गुण नैसर्गिक रूप में आ जाते हैं फिर भी संहिता का पालन करना चाहिए।

निषिद्ध आचरण एवं कर्म

देव स्थान, गुरु का स्थान, रमशान व चौराहे में जूते पहन कर न जाय, टट्टी-पेशाब न करे, स्त्री सम्पर्क भी न करे। पागल, शूद्र, खुले (बिखरे) वालों वाली, रजस्वला, लटके स्तनों वाली कुरूप और काम वासना से पीड़ित स्त्री की निन्दा न करे, घृणा भाव न रखे और स्त्रियों के साथ क्रूरता का व्यवहार न करे। दूसरे का धन और पराई स्त्रियों के प्रति कभी भी कामना न करे। छोटी बच्ची (कन्या) के गुप्तांग पर दृष्टि न डाले, पशुओं की काम क्रीडा,

नग्न स्त्री और उधड़े स्तन वाली स्त्री को न देखें। धान्य, गाय, देवता, गाय, गुरु और अग्नि की तरफ पैर न पसारे। आलस्य, मोह, अहंकार, चुगली, झगड़ा, ईर्ष्या, शाप, दूसरे की निन्दा, अपनी बड़ाई न करे। चिन्ह धारण करने वाले साधुओं, व्रत करने वालों, वेद—वेदांग—संहिता—पुराण और तन्त्र शास्त्र की निन्दा न करे।

आज के व्यक्ति को ये आचरण कठिन लग सकते हैं और एक क्षण को ये तर्क संगत भी न लगें किन्तु साधना के लिये जिस प्रकार की भाव भूमि चाहिए उसके लिये ये अनिवार्य तत्त्व हैं। इनके होने से हमारे मन में विकार आता है और विकृत मन में साधना का बल प्रकट नहीं होता। जिस प्रकार चिकित्सालय में स्वच्छ हवादार कोटाणु रहित वातावरण बनाये रखना पड़ता है उसी प्रकार साधना में भी पवित्र एवं एकात्मिक वातावरण बनाया जाता है। जो लोग साधना क्षेत्र को पवित्रता का आनन्द ले चुके होते हैं वे लोग जानते हैं कि उपरिलिखित आचरण कितने विषाक्त होते हैं, इनसे व्यक्ति के विचारों में कितना विकार आता है, उसकी एकतानता में कितना विक्षोभ होता है।

जप

हम जानते हैं कि जप का अर्थ किसी भी अक्षर (बीज) या वाक्य की बार-बार आवृत्ति होता है। शास्त्रों ने इसके तीन प्रकार बताये हैं उपांशु, प्रोष्ठ और मानसिक अथवा वाचिक, कायिक और मानसिक। दूसरा सुन सके, ऊँचे स्वर में स्पष्ट अर्थ प्रकाशक जप वाचिक अथवा प्रोष्ठ कहलाता है। षट् कर्म के लिये किया जाने वाला जप वाचिक होता है। ऐसा शास्त्र कहते हैं अन्यथा विद्या और स्तोत्र श्रव्य ध्वनि में किये जाते हैं। कायिक अथवा उपांशु जप में ध्वनि श्रवण योग्य नहीं होती, ओंठ हिलते रहते हैं। इस प्रकार का जप सर्वसिद्धि देने वाला माना जाता है। मानसिक जप मुक्तिप्रद रहता है। वास्तव में जप का यही प्रकार सर्वोत्तम होता है, इसी में मन्त्र प्रकट होता है। पराम्बा की कृपा से वाचिक जप करने पर भी मन्त्र के प्रकट होने की स्थिति आ जाती है तो वाणी रुद्ध हो जाती है, मन एक अवाच्य आनन्द में डूब जाता है। मानसिक जप में एकाग्रता हो जाती है, शब्द और अर्थ में भेद नहीं रहता। अन्तःकरण में जो शब्द ध्वनित होता है उसका अर्थ बुद्धि में

प्रकाशित होता रहता है। बहुत प्रयास करने पर यह स्थिति प्राप्त होती है। मानसिक एकाग्रता यथार्थ में मन्त्र के प्रकट होने की भूमिका है। हम इस एकाग्रता की शान्त निश्चल अवस्था से ही विभोर हो जाते हैं उस पर यदि मन्त्र का रूप प्रकट हो जाय तो हम कृतकृत्य हो जाते हैं। ऐसा एक बार का अनुभव ही हमें कल्मषमुक्त कर जाता है, हमारे भीतर एक दिव्य सत्ता की स्थापना कर देता है, हमारे में शक्ति का स्रोत फूट निकलता है, यदि ऐसा निरन्तर होने लगे तो मुक्ति भी उसके आगे आकर्षण हीन हो जाती है। इस अवस्था का लाभ मानव देह और जीवन की चरम सार्थकता होती है। यद्यपि इस परमानन्द के प्राप्त करने पर व्यक्ति जागतिक सुखों की तरफ से विमुख हो जाता है फिर भी वह चाहे तो इच्छा मात्र से लोगों की विषमताओं का समाधान कर सकता है, एक सामान्य जन को विशिष्ट व्यक्ति बना सकता है। पराम्बा के प्रसाद से उसे अनुग्रह करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। सावचेत साधक इस स्थिति को आयत्त करके भी उसे प्रयोग में नहीं लाता, अपनी क्षमताओं से अज्ञात यौवना की तरह सर्वथा अपरिचित बना रहता है। उसकी यह मुग्धता ही उसका वैभव होता है।

यह मुग्धता अज्ञान जनित न होकर शिशु की सरलता का प्रबुद्ध रूप होती है। जितने उच्च कोटि के साधक हुए हैं, उनमें इस तरह की सरलता स्वभाव से प्रकट हो जाती है। उन साधकों को प्रेय और श्रेय का अन्तर स्पष्ट ज्ञात होता है इसलिए मन के प्रिय पदार्थ और आचरण उनको लुभा नहीं सकते साधना करते समय विघ्न आते ही हैं किन्तु सम्पूर्ण रूप से समर्पित साधक परमानन्द से पहले रहता नहीं। जिस प्रकार अज्ञान के हटने पर निर्वेद प्रकट होता है उसी प्रकार जप की श्रेष्ठता से प्राप्त अवस्था में व्यक्ति किसी भी प्रकार के मोह वा संकीर्णता से ग्रस्त नहीं होता। जप से उत्कृष्ट स्तर प्राप्त करते हुए व्यक्ति के मार्ग में कुश कण्टक जैसे अवरोध तो आते ही हैं, साधना से मन का उचट जाना, मुखे क्या मिला, मैं क्यों समय खो रहा हूँ, ऐसे प्रश्न उसके मन में उठने वाले विपरीत प्रकृति के विघ्न होते हैं।

एक क्षण को व्यक्ति इस प्रकार के अवरोधक भावों की उपेक्षा करके चलता रह सकता है किन्तु कालान्तर में अनुकूल विघ्न भी आ जाते हैं। साधक को किंचित् सफलता प्राप्त होने लगती है, वह अपनी शक्ति से छोटे-मोटे काम करने लगता है, उसका वचन फलीभूत होने लगता है और वह

इसमें इतना भूल जाता है कि उसे याद ही नहीं रहता कि इस चमत्कार प्रदर्शन और नश्वर सम्मान के मोह में आकर अपनी साधना का क्षय करता जा रहा है। इतने से ही सन्तुष्ट व्यक्ति को सिद्धियों का उत्कृष्ट स्तर प्राप्त नहीं होता, अणिमादि सिद्धियाँ उसके लिये अगम्य हो रहती हैं।

इस पर सावधान रहने वाला साधक अणिमादि सिद्धियाँ और ऐसी ही अन्य सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है इनका भी वह उपयोग नहीं करता। सच्चे अर्थों में वह स्वतन्त्र हो जाता है और यह संसार उसके लिये एक मंच हो जाता है जहाँ पर वह स्वयं असंपृक्त भाव से लीला करता है और यहाँ पर घट रहे में, परमेश्वरी का रूप दर्शन करता रहता है। कृष्णा उसमें विद्यमान रहकर कर्षण करती है, लोग स्वतः समाकृष्ट हुए उसके पास खिंचे आते हैं, ईशनी शक्ति उसका शासन मनवाती है और राधिका उसे आह्लाद के सागर में बोरे रखती है। आगम कहता है कि साधना के इस प्रकृष्ट स्तर पर पहुँचा व्यक्ति सहिष्णु, सदा प्रसन्न, अयाचक होकर भी दाता, परमोदार हुआ रहता है। जिसे इच्छा शक्ति कहते हैं उसका चमत्कार भी इसी स्तर पर दिखाई देता है। सारा संसार उसकी ईशनी के क्षेत्र में आ जाता है। जहाँ उसकी कल्पना सघन हुई वही साकार हो गया, उसके अनुशासन से स्थलित होने की स्थिति बनती ही नहीं।

तान्त्रिक मन्त्रों की बिना गुरु के दीक्षा

किसी भी अथवा उपयुक्त मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के दिन, अपने नाम से चन्द्र व तारा बल देखकर दक्षिणा मूर्ति (कालिका) के मन्दिर में जाकर कलश स्थापन करे। अभीष्ट मंत्र ताल पत्र पर लिख कर कलश पर देवी एवं मन्त्र के देवता का पूजन करे। भगवती कालिका ही (अथवा शिव ही) गुरु हैं ऐसा मानकर उस तालपत्र पर लिखे मन्त्र को कलश के समर्पित कर श्रद्धा-विश्वास पूर्वक ग्रहण कर ले। उसे एक सौ आठ बार जपे।

ये विधियाँ क्षुद्र देवता के मन्त्रों की अथवा शावर मन्त्रों की हैं। ग्रहीत मन्त्र का पुरश्चरण करने पर वह सिद्ध होता है और सिद्ध होने पर ही वह कार्यक्षम होता है। प्रत्येक मन्त्र के स्तर व आकर के अनुसार पुरश्चरण की मात्रा निधारित की गई है। जिनकी संख्या का उल्लेख नहीं किया गया हो उनकी दस हजार-जप करने की मर्यादा है।

मन्त्र की साधना करते समय व्यक्ति को अनेक प्रकार के चमत्कार दृष्टिगत होते हैं, अनेक दृश्य दिखते हैं, दूरश्रवण-दूरभाष जैसे आभास होते हैं, वाक्सिद्धि का प्रारंभिक स्तर प्रकट होता है। ऐसी कई स्थितियाँ सामने आती हैं। साधक इन दिव्य अनुभवों को किसी के आगे प्रकट न करे, केवल गुरु को ही ये सुनावे। इनपर इतराने या दूसरों को कह देने से ये बन्द हो जाते हैं।

पूजा का माध्यम

देवता मन्त्र का रूप होता है। उस रूप के अंग-उपांग कल्पित होते हैं तब उसकी पूजा की जाती है। देवमूर्ति की पूजा करने की परम्परा हमारे यहां प्राचीन काल से चलती आ रही है किन्तु मूर्ति के अलावा जल में, अग्नि में, हृदय में, सूर्य में और वेदी पर भी पूजा की जाती है। भारतीय कर्मकाण्ड से परिचित लोग जानते हैं कि वरुण कलश और रुद्र कलश रखकर इनमें तत्तद् देवताओं का पूजन किया जाता है। पूजन करने के लिये पट्टे पर कपड़ा बिछा कर चावलों अथवा अन्य पदार्थों से मण्डल बनाकर उसमें पूजा करने का व्यवहार भी हमारे लिम्बे अपरिचित नहीं है। यज्ञ करते समय इस अग्नि का और यज्ञ पुरुष का पूजन करते हैं, विभिन्न देवताओं के नाम से आहुतियाँ देते हैं, ऐसे ही सूर्य मण्डल में भी देवताओं का पूजन किया जाता है। जो साधक एकाग्र होना जानते हैं वे अपने हृदय में देवता की मानस पूजा कर लेते हैं। जो लोग अल्प बुद्धि वाले होते हैं वे प्रतिमा का पूजन करते हैं। क्रियावान् अग्नि में, योगी हृदय में, पण्डित सूर्य मण्डल में और भावित आत्मा वाले वेदी में पूजते हैं। ये प्रतिमायें छः प्रकार की होती हैं—अकृत्रिम, कृत्रिम, अचल, चल, निर्जीव और सजीव।

अकृत्रिम प्रतिमा—प्रकृति निर्मित होती है, जैसे शालिग्राम और द्वारका पुरी का चक्र।

कृत्रिममूर्ति—दास प्रकार की होती हैं—रत्न जटित, स्वर्णमयी, चान्दी की, ताम्बे की, पीतल की, स्फटिक की, सीसे की, काष्ठ की, मिट्टी की और चित्र रचित। इनमें पूर्व-पूर्व श्रेष्ठ रहती हैं।

अचल मूर्ति—तीर्थादि होते हैं जैसे श्री शैल, कामाख्या, हरद्वार।

चल मूर्ति—उसे मानते हैं जो देवताओं अथवा तपोनिष्ठ व्यक्तियों द्वारा निर्मित होती हैं जैसे-कामाख्या, चामुण्डा ।

सजीव मूर्ति—में सदाचारी ब्राह्मण और गायें माने जाते हैं ।

निर्जीव—में पीपल माना जाता है ।

सावयव-सांगोपांग मूर्ति को प्राण प्रतिष्ठा करने पर वह पूजा का विषय बनती है । गृहस्थ व्यक्ति के घर में नौ अंगुल से बड़ी मूर्ति नहीं रखी जाती क्योंकि इससे बड़ी होने पर उसके लिये स्वतन्त्र घर बनाना होता है जिसे मन्दिर कहा जाता है और मन्दिर का अनुशासन घर की व्यवस्था से भिन्न होता है ।

मूर्ति का अंग-भंग या अन्य विकार होने पर उसे समुद्र में या सुमद्र में जाने वाली नदी या तालाब आदि में विसर्जित कर दिया जाता है । भग्न और जीर्ण-शीर्ण मूर्ति का पूजन करने पर दोष लगता है । जो मूर्ति काठ की है उसे अग्नि के समर्पित कर दिया जाता है । कलैण्डर में छपी मनोहर छवि को भी देवता के रूप में पूजने की परम्परा हमारे यहां है □

शास्त्रीय व्यवस्था

तन्त्र, उपासना में मध्यक्षेत्र है क्योंकि इनमें किए जाने वाले अनुष्ठान में मन्त्र भी है, औपधि भी है। तन्त्र शब्द का एक अर्थ होता है—विस्तार। विस्तार किसका ? मन्त्र का मनन से प्राप्त ज्ञान का अर्थात् यहां क्रिया प्रखर रूप से व्यक्त होती है, विस्तारित होती है। संसार शक्तिपरिचालित अतएव क्रियामय है। शक्ति कभी शान्त-निष्क्रिय नहीं होती। तान्त्रिक प्रयोगों में मन्त्र का प्रयोग अबाध ही नहीं आवश्यक रूप से भी किया जाता है। मन्त्र की रचना करने में बीजों एवं शब्दों का संयोजन किस निमित्त तथा किन सिद्धान्तों पर किया जाता है—इस विषय पर 'तंत्र दर्शन' में पर्याप्त विचार हो चुका है। यहां हम संक्षेप में मन्त्र जप में हमारे अथुवा साधक के प्रयास और उसके फल पर विचार करेंगे।

जप में वाचिक, उपांशु और मानस ये तीन प्रकार बताये गए हैं। स्तोत्र पाठ को श्रव्य, ध्वनि में बोलने का और मन्त्र को मानस स्तर पर जपने का आदेश हमारे शास्त्रों में है। स्तोत्र को विद्या भी कहते हैं, जो मन्त्र शत-सहस्राधिक शब्दों का हो जाता है वह विद्या कहलाता है। मन्त्र में जितने कम अक्षर होते हैं उसका पुरश्चरण करने के लिए उतनी ही अधिक मात्रा में और अधिक अक्षर वाले मन्त्र (विद्या) का कम संख्या में जप किया जाता है।

मानसिक जप क्या है? जप का अर्थ है बार-बार आवृत्ति। जप इसलिए किया जाता है कि निहितशक्ति (पोटेंसी) को व्यवहारयोग्य रूप में प्राप्त करना। भारतीय पद्धति में बारंबारता को अधिक महत्त्व दिया गया है। आयुर्वेद में किसी धातु या रत्न में रासायनिक परिवर्तन करने के लिए सौ बार, हजार बार पाक करने का विधान है जैसे सहस्रपुटी लौह भस्म, कुछ ऐसे रत्न होते हैं जिनकी भस्म बनाने के लिए अनेक बार पाक क्रिया को दोहराना पड़ता है। बारंबारता से सिद्ध भस्म में कितनी उपयोगी, शक्तिशाली एवं महत्त्वपूर्ण होती हैं—यह तथ्य आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञाता अच्छी तरह जानता है। रत्न या

धातु मूल रूप में प्रकृति में जिस तरह है उन्हें विविध कर्मों का साधक बनाने के लिए घर्षण, क्वथन, तापन आदि प्रक्रियाओं के माध्यम से साधित करना पड़ता है। अंगूठी या कण्ठी में जड़ा रत्न, भास्वर रूप में आने तक अनेक कठोर क्रियाओं से गुजरता है, तब कहीं जाकर वह इतने मोहक-मूल्यवान् स्तर को प्राप्त करता है, इससे भी अधिक जटिल एवं श्रम-साध्य प्रक्रिया में से तब गुजरना होता है जब इसकी भस्म बनती है।

यह प्रक्रिया समय, श्रम और शक्ति तो रत्नादिकों को केवल बाह्य शरीर के लिए उपयोगी बनाने में की जाती है जिसमें वस्तु को साधित करके सिद्ध वस्तु से केवल सांयोगिक फल प्राप्त किए जाते हैं। मन्त्र साधना भी ऐसी ही एक प्रक्रिया है किन्तु उसमें अन्तर इसलिए है कि उसे वस्तु शक्ति पर निर्भर न करके चुम्बकीय शक्ति से ओत-प्रोत किया जाता है। भस्म बनाने में जिस तरह पुट दिए जाते हैं मन्त्र साधना में संपुट दिया जाता है, प्रकृति में अवस्थित वर्णों, बीजों एवं शब्दों को शोधने, तरासने, पकाने जैसी क्रियाएं इसमें भी सम्पादित की जाती हैं पर यह अन्तःकरण के लिए, अन्तःकरण की साधना है इसलिए इस सारे आयोजन में भौतिक अथवा घाष्णिग ताप अथवा शक्ति का उपयोग नहीं किया जाता, सभी कुछ चुम्बकीय शक्ति से किया जाता है—शोषण, छेदन, ताडन, तापन जैसी तकनीकी क्रियाओं से मन्त्र को संशोधित किया जाता है और उसके बार-बार जप करने से, संपुट, पल्लव, न्यास, हवनादि क्रियाओं से उसकी शक्ति को अविकल रूप से सिद्ध अवस्था में लाया जाता है।

भौतिक शास्त्री कहते हैं—मानसिक जप में ध्वनि उत्पन्न नहीं होती। यह मस्तिष्क को मात्र आभासित होती है। संभवतः प्रत्यक्षविश्वासी अभी अविकसित अवस्था में हैं, उनकी यान्त्रिकता जब तक इसको सिद्ध नहीं कर देगी तब तक वे आभास रूप में ध्वनित शब्दों को वास्तविक नहीं मानेंगे। हमारे शरीर जैसा सजीव, सप्राण, आत्मनिर्भर यन्त्र ही इसकी सूक्ष्म क्रियाओं को नाप सकता है और ऐसा यन्त्र बनाते ही भौतिकविज्ञान आध्यात्मज्ञान हो जाता है। हमारे जीवन में भी इस आभासिक ध्वनि का चमत्कार हम अनुभव करते हैं। किसी व्यक्ति के प्रति प्रेमाभिभूत होकर हम बिना मुंह से बोले भी प्रेम की, स्नेहाशक्ति की अभिव्यक्ति स्पष्ट एवं प्रबल रूप से कर जाते हैं तो किसी के प्रति घृणा या रोषाविष्ट होकर हमारी विरक्ति को शब्द—श्रवणीय

शब्द —के बिना भी प्रकट कर लेते हैं। यह सब उस आभासिक ध्वनि का ही चमत्कार है जो मन की वैद्युतिक शक्ति से विस्तारित एवं प्रक्षेपित की जाती है अन्यथा घृणा या द्वेष के लिए मूलतः हमारे अन्तःकरण में रजतम (गुण) की मिश्रित धारा उत्पन्न होती है, उसमें किसी व्यक्ति का नाम नहीं रहता। मानसिक स्तर पर आने के बाद उसमें व्यक्ति का नाम जुड़ता है, ऐसे ही प्रेम में सत्वरज मिश्रित धारा उत्पन्न होती है। ये गुणात्मक धाराएं इनीशियल इनर्जी से उद्भूत होती हैं जो मन के संस्पर्श से वैद्युतिक शक्ति से आविष्ट भी होती हैं और व्यक्ति विशेष के प्रति प्रक्षेपित भी होती हैं तथा शब्द का वर्णात्मक एवं सूक्ष्म आकार भी ग्रहण करती है इसलिए मानसिक जप में आभास नहीं, वास्तविक शब्दावृत्ति होती है। इस शब्दावली का तरंगदैर्घ्य साधक की भावना पर आधारित होता है। भावना में मन्त्र, देवता, अभीष्ट कार्य के प्रति साधक की उत्कटता, एकाग्रता व निष्ठा इन सबका समावेश रहता है। आवर्तनशीलता (फीक्सेसी) शब्दों की ही रहा करती है। रेडियो, इलेक्ट्रोमैग्नेटिक तरंगों पर ध्वनि को इम्पोज् करना जिस तरह रेडियो सम्प्रेषण का सिद्धान्त है उसी तरह भावना पर मन्त्र के शब्दों को आरूढ़ करना ही जप है। रेडियो में संग्राही उपकरण के माध्यम से उन तरंगों को ग्रहीत व ध्वनि में रूपान्तरित किया जाता है—यहां यह आवश्यक नहीं कि जिस व्यक्ति पर प्रयोग किया जा रहा है, वह संग्राही अवस्था को प्राप्त हो ही, इसलिए मन्त्र के प्रयोग में अधिक सामर्थ्य होती है, भले ही वह रेडियो जितनी व्यापक न हो।

शब्द के बाह्य विचरण एवं अभिव्यंजना में भौतिक विज्ञान एवं भारतीय दार्शनिकों में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। वैशेषिक दर्शन, सांख्य (कारिकावली) भर्तृहरि, प्रशस्तपाद एवं अन्य व्याकरणकारों ने शब्द की नित्यता और अनित्यता, उसके प्रकटीकरण एवं विलयन आदि के विषय में बहुत विस्तार से विचार किया है। शब्द वस्तुतः आकाश (ईथर) का गुण है यह तथ्य हजारों वर्ष पहले भारतीय वैज्ञानिक जान चुके थे। शब्द की उत्पत्ति (फिशन और फ्यूसन) विखण्डन और संलयन दोनों से होती है जैसे बांस को चीरने और ताली बजाने, इसी में (कण्डन्सेसन और रिफ्रैक्शन) संग्रहण और अपवर्तन जैसी स्थितियां भी हैं। यह दूसरी बात है कि संलयन जैसी क्रियाएं बहुत मन्द स्तर पर जैव भौतिक (बायोफिजिक) स्तर पर होती हैं। भौतिक

शास्त्र, शब्द को, अपने स्वभावानुसार स्थूल रूप में नापता है वह उसके आवर्तन और तरंगदैर्घ्य को अपने उपकरणों के माध्यम से जानता है, उसके लिए (साउण्ड) ध्वनि ही सबसे बड़ा आयाम है। भारतीय दार्शनिक शब्द को मोटे तौर पर ध्वनि और वाक् दो रूपों में मानते हैं। ध्वनि में मनुष्येतर वस्तु कारण रहा करती है और वाक् में आत्मा एवं मन का संयोग कारण रहा करता है। अंग्रेजी का स्पीच् वाक् का ही पर्याय है। तदपि मशीन कम्पनों, आवर्तनों और तरंग दैर्घ्य को ही नापा करती है, उसके लिए सभी कुछ साउण्ड है—ध्वनि और वाक् का उसकी दृष्टि में कोई अन्तर नहीं। स्थूलता के प्रति विज्ञान का यह आग्रह पुराणों के गृध्र बंधुओं—सम्पाति और जटायु—की स्थूल बुद्धि का उपाख्यान स्मरण करा देता है। उन स्थूल बुद्धियों ने सूर्य के स्थूल स्वरूप को प्राप्त करने का बालिश कर्म किया था और परिणाम में अपने पंख जला बैठे थे। सूर्य के भौतिक स्वरूप में प्रबल दाह के अतिरिक्त है भी क्या ? इस समय वैज्ञानिक विकास की स्थूलबुद्धि और जड़पद्धति का भी किसी दिन ऐसा ही परिणाम सामने आ जाए तो आश्चर्य क्या ?

भौतिक विज्ञान जिसे धमाका कहते हैं उसके लिए अधिकतर विस्फोट शब्द का हिन्दी में—व्यवहार किया जाता है, शब्द की उत्पत्ति में हम स्फोट शब्द का प्रयोग करते हैं जो वैज्ञानिक दृष्टि से फिशन क्रिया है किन्तु हमारे सजीव देह में यह शब्द एक सुकोमल क्रिया का सूचक है जिसका अर्थ है विकास, खिलना, प्रस्फुटित होना। उद्यान में कुसुम कोरकों का विकसित होना भी चटखना कहा जा सकता है तो इस स्तर पर विकासाश्रयी क्रिया में फिशन मानने में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है।

वैय्याकरण और तांत्रिक दोनों इस तथ्य में एकमत है कि शब्द, कण्ठ से निकलने के बाद स्थूल हो जाता है। जिस प्रकार मूल वस्तु (शून्य) से उत्पन्न इलेक्ट्रान आदि तत्त्व सघन से सघनतर होते हुए तत्त्वमय आकाश, वायु, तेजस्, जल, पृथ्वी स्तर पर संघटित होने के पश्चात् पुनः रूपान्तर होने की अवस्था को उन्मुख हो जाते हैं उसी प्रकार शब्द भी वैखरीवृत्ति—मनुष्य के कण्ठ से उच्चारण—को प्राप्त कर विलीन हो जाता है। स्वाभाविक है इस वैखरी वृत्ति, श्रवणीयता, के स्तर पर शक्ति का ह्रास हो ही जाता है अर्थात् इस स्तर पर शब्द की नैसर्गिक शक्ति प्रकट नहीं हो पाती और उसमें वह क्षमता नहीं आ पाती कि सूक्ष्म के माध्यम से स्थूल में परिवर्तन कर दें।

भारत का प्राचीन विज्ञान शब्द के अनुसंधान और साधना का ही विज्ञान है। शब्द में अन्तर्निहित परमाणविक ऊर्जा को प्रकट व प्राप्त करने के लिए भारतीयों ने अथक परिश्रम और साधना की थी जिसके फलस्वरूप हमें मन्त्र शास्त्र का वरदान मिला है।

शब्द की विराट् शक्ति को प्रकट करने के लिए हमें शब्द के मूल स्वरूप को पहचानना पड़ता है। जैसे अणुशक्ति के लिए पदार्थ के सूक्ष्मतम अंश को पहचाना जाता है। शब्द का यह स्वरूप उसके उद्भव से लेकर विकास तक की यात्रा को समझने से ग्राह्य होता है। प्रसंगानुसार हम शब्द के मूल उद्गम की तन्त्रशास्त्र की दृष्टि से देखें, यह विश्लेषण करें कि हमारे कण्ठ से निर्गत होने से पहले शब्द किन अवस्थाओं और आधारों से होता हुआ इस रूप में प्रस्फुटित होता है।

तन्त्र शास्त्र शब्द के उद्गम किंवा अभिव्यक्ति होने के क्रम में कहता है कि भगवान् परमशिव अर्थ के प्रतीक हैं वे जब स्वरूप में अवस्थित रहते हैं तो निष्कल रहते हैं, उस समय शब्द रूपा शक्ति भी स्वरूपस्थ रहती है किन्तु जब अर्थ व्यक्त होना चाहता है तो उसमें विक्षोभ उत्पन्न होता है, और वह शक्ति की ओर उन्मुख होता है, इस वृत्ति को शब्द शास्त्र में विवक्षा कहा गया है, संस्कृत में इसके लिए बिन्दु और विसर्ग संकेतक माने गए हैं। तन्त्र शास्त्र शब्द के मूल स्वरूप के विषय में कहता है—

“परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधासौ भिद्यते पुनः

बिन्दुर्नादः बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः”

परावस्थापन्न शिव शक्तिमय होकर तीन रूपों में विभाजित हो जाता है, बिन्दु, नाद और बीज। यहां शिव और शक्ति में कोई अन्तर है ही नहीं क्योंकि शिव शक्तिमय है और शक्ति शिवमय। वस्तुतः स्थाणुरूप की सक्रिय अवस्था ही शक्तिसंगत अवस्था है किन्तु उनके विलास का जितना विस्तार होता चला जाएगा उतना ही यह आभासिक भेद बढ़ता जाएगा। अन्यत्र कहा है—

“सोन्तरामा तदादेवि नादात्मा नदते स्वयम्”

अर्थात् अवहन्तरात्मा नादात्मा है और वह स्वयं ही नदता है, (नाद करता है।)

**“यथा संस्थान भेदेन भूयोऽसौ वर्णतां गतः
वायुना प्रेर्यमाणो सौ पिण्डाद् व्यक्ति प्रयास्यति”**

स्थान और अवस्था भेद से यह नाद करता हुआ, नादात्मा वर्ण रूप होकर वायु से प्रेरित होता है तथा पिण्ड से व्यक्ति में व्यक्त होता है।

भर्तृ हरि कहते हैं—

**“आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनोयुक्ते विवक्षया
मनः कामायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मास्तम्
मास्तस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्”**

अर्थात् बोलने के लिए सबसे पहले आत्मा (शिव) में क्रिया होती है जो अर्थ रूप ही है वह बोलने की इच्छा से बुद्धि और मन से युक्ति करता है। मन कार्याग्नि (फिजिकल इनर्जी) को आघात करता है और अग्नि के कारण वायु विस्तारित होता है, वायु हृदय प्रदेश में विचरण करता हुआ मन्द स्वर उत्पन्न करता है।

यह भर्तृ हरि का मत था। सभी मतों को संग्रहीत करके हम बोधगम्य रूप में शब्द की सूक्ष्म अवस्था का विश्लेषण इस प्रकार कर सकते हैं—एक व्यक्ति जब कुछ करने की इच्छा करता है तो उसके सहस्रार में से (स्मरण रहे सहस्रार परमशिव का धाम माना जाता है, कुण्डलिनी शक्ति वहां जाकर मुक्त हो जाती है जिस तरह नदी सागर में जाकर सागरमय हो जाती है वैसे ही स्थिति कुण्डलिनी की सहस्रार में जाकर होती है) सूक्ष्म तरंगों आज्ञाचक्र में से होकर सीधे मूलाधार से टकराती हैं, वहां से वे ऊपर की ओर उठती हैं और मार्ग में जिन-जिन चक्रों में जो-जो वर्ण, अक्षर अवस्थित हैं उनको स्पन्दित करती हुई तथा स्पन्दन से उद्भूत अक्षरों को समेटती हुई कण्ठ प्रदेश में टकराती है और कण्ठ से बाहर निर्गत होकर स्थूल रूप में वातावरण में फैल जाती है। इस क्रम में अर्थ में स्फोट होता है वर्ण संयोग से और यही शक्ति प्रकट हो जाती है अन्यथा अर्थमय रूप में शक्ति गौण रहा करती है। परमशिव तो वस्तुतः इन्द्रियातीत एवं ज्ञान से परे है इसलिए परमशून्य के अतिरिक्त किसी शब्देतर से सम्बोधित नहीं किया जा सकता। शक्ति से संयुक्त होकर अथवा शक्तिमय अवस्था को प्राप्त करके भी वह अपने मूलभाव को छोड़ नहीं पाता इसीलिए उसे अर्थरूप कहा गया है। तन्त्र में शब्द की

मूल अवस्था बिन्दु, बीज और नाद को शिव, शक्ति और दोनों के सांयोगिक रूप से मानी है इस त्रिविधा स्थिति में शक्ति की प्रधानता होने पर रौद्री, ज्येष्ठा, वामा तथा शिवांश की प्रधानता रहने पर रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा की सत्ता प्रकट होती है। शाक्तों का वामाचार यथार्थ रूप में वामा शक्ति का आचरण है और वामा है शिव शक्ति का संयोग। शब्द के विवेचन में तन्त्र शास्त्र वाक् व्यवहार में भी वामाचार को स्वीकार करता है क्योंकि अर्थ जो अपने स्वरूप में निश्चल है वह शब्द के साथ युक्ति करके वाणी को समग्रता और सोद्देश्यता प्रदान करता है। एक वचन के अनुसार स्वर दीपक है और व्यंजन पीठ है। ग्रन्थान्तर में व्यंजनों (कादि हान्त) को योनि कहा गया है और स्वरों को विस्फारक क्योंकि व्यंजन अर्ध मात्रिक हैं जिनके लिए कहा गया है—

अर्ध मात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः

किन्तु स्वर ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत के भेद से अपनी स्वरित शक्ति के कारण विशिष्ट स्थिति को प्राप्त हैं। नितान्त भौतिक स्वर से लेकर ज्ञान से अतीत अवस्था तक प्राप्त करने का माध्यम शब्द ही बनता है, शब्द ही परम शिव की कलात्मक अवस्था को अधिगृहीत किये हुए है। ये कलायें शब्द के स्फोट की विकासमान अवस्थाएँ हैं। प्रत्येक वर्ण यों तो हमारे लोक का निवास है जिसके स्वतन्त्र रूप की विशद व्याख्या हमारे तन्त्रज्ञों ने की है फिर भी उसके निरन्तर उच्चारण करने से हमारे वातारण समाज व प्रकृति में क्या अन्तर व प्रभाव पड़ेगा—इसका निर्णय मन्त्रों के स्वरूप निर्धारण का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है।

व्यावहारिक जगत् में हम जो कार्य व्यापार देखते हैं, उनको बाह्य जगत् का विषय मानते हैं किन्तु मूलतः बाह्य में हो रहा परिवर्तन पहले अन्तस् में, सूक्ष्म में हुआ करता है। जो व्यक्ति इस सिद्धान्त को समझ जाता है कि आभ्यान्तर में क्या परिवर्तन किया जाय जिससे बाह्य को अभीष्ट रूप या अवस्था दी जा सके, वह कीमियागार हो जाता है, वैज्ञानिक हो जाता है, तन्त्रज्ञ हो जाता है। इस दृष्टि से मन्त्र वह सूत्र है जो सूक्ष्म के माध्यम से स्थूल को प्रभावित-परिवर्तित करता है। हम प्रयोजनपरक अनुष्ठान करते हैं, इसलिए औपधि लेने और उसके पथ्य व अनुपान को यथाविधि साधने से अधिक कुछ नहीं समझ सकते और रोगमुक्त होने पर कृतकार्य हो लेते हैं।

औषधि का रहस्य निघण्टुकार, शरीरक्रियाविज्ञ ही जानता है इसलिए वह औषधि के रूप में विभिन्न रोगों से मुक्त होने के सूत्र हमें दिया करता है, यह मैकेनिज्म है, सामान्य साधक आपरेटर हुआ करता है।

शब्द की शक्ति का प्रगटीकरण अन्तर्मुखता में हुआ करता है। साधना करने का तरीका शुद्ध और सम्पूर्ण रूप से अन्तःकरण का विषय है। प्राण संचार के साथ हमारे मन की बहिर्मुखी वृत्ति एवं संचार को संवरित एवं नियन्त्रित करने पर हम मन के माध्यम से शब्द की वास्तविक शक्ति को प्राप्त किया करते हैं। जिस समय हम भौतिक विज्ञान की दृष्टि से आभास मात्र के रूप से उच्चरित शब्द को, शब्द के स्पन्दन (वाइब्रेशनस) को सुनते हुए शब्द के मूल उद्गम पर (कर्णातीत तरंगों पर) पहुँचते हैं तब शब्द को पूर्ण रूप से कार्यक्षम व शक्ति सम्पन्न रूप में प्राप्त करते हैं। आज भौतिक शास्त्र यह मानने को तत्पर नहीं है कि हम अपने स्वरतन्त्र से कर्णातीत तरंगों को उत्पन्न कर सकते हैं किन्तु जिन लोगों ने इन तरंगों को उत्पन्न करना सीख लिया है, उन लोगों ने मन्त्र सिद्ध कर लिया है और वे एक ही मन्त्र की सिद्धि के पीछे पूजित हो रहे हैं यक्ष, किन्नर, पिशाच जैसे अस्तित्व भी इन कर्णातीत तरंगों की पकड़ से मुक्त नहीं हैं तो सम्मोहन से लेकर मारण जैसे कर्म भी इन तरंगों की प्रकृति-प्रभाव की सीमा में ही हैं, और इनसे मृत्यु जैसी शाश्वत एवं अनिवार्य प्रकृति पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है, मार्कण्डेय जैसे उदाहरण भारत में मिल जाएंगे किन्तु विज्ञान यहां भी सहमत नहीं होगा। विज्ञान के आग्रह अविकल रूप से आत्मज्ञान के क्षेत्र में घटित नहीं हो सकते। संभव हैं, भविष्य में या तो जड़ विज्ञान आध्यात्मिक क्षेत्र में ऐसे दुराग्रह न रखे या ऐसी विद्या का आविष्कार कर ले जो अपनी संवेदनशीलता के बल पर विश्वासों को उनके आयाम से सिद्ध कर दे। भौतिक विज्ञान की यह यत्किंचित् संगति प्रासंगिक रूप से केवल अभिज्ञान के निमित्त प्रस्तुत की गई है, साधना क्षेत्र में इसका कोई पारमार्थिक महत्त्व नहीं है क्योंकि हमारी वैज्ञानिक शैली ऐलिमेंट पद्धति पर आविष्कृत व विकसित नहीं हुई है, वह संसार के विस्तार को पांच तत्त्वों एवं उनके कारणभूत अन्य पंचको को मानती है और यह सिद्धान्त कहीं भी व्याप्त या अतिव्याप्त नहीं हुआ है। मन्त्र के उपासक को विश्वासजीवी होना पड़ता है और अन्धता की सीमा तक श्रद्धाभिभूत होना पड़ता है फिर उसे जो चमत्कार दिखाई पड़ता है जो

अलौकिक समृद्धि हस्तगत होती है वह विज्ञान की पहुंच से परे अविश्वसनीय सी हुआ करती है।

दोषास्विष्ट और मलावृत मन में संवेदनशीलता नहीं रहती और ऐसी स्थिति में मन्त्र किंवा मन्त्र रूप देवता का प्रकटीकरण संभव नहीं हो पाता। उपासना के लिए जो व्यवस्थायें और आचरण बताए गए हैं उनका पालन करना आज के जीवन में कठिन ही नहीं उपहासास्पद-सा भी लगता है किन्तु ऐसी शिकायत करने वाले लोग किसी भी भौतिक अनुष्ठान में की जाने वाली तैयारियों और सावधानियों के प्रति कठिनता की शिकायत नहीं करते। दफ्तर में जाने वाला व्यक्ति जूतों को चमकाने, तंग पतलून, कोट, टाई आदि पहनकर बिल्कुल आधुनिक बनने में जो स्वांग रचता है या बिजली का काम करने वाला मिस्त्री जिस तरह के वस्त्र, दस्ताने एवं उपकरणों का ढेर लेकर चलता है उसे उपहास का पात्र नहीं बनाया जाता। साधक को इस सारी दुर्बलता से ऊपर उठ कर साहस व निष्ठा के साथ साधना करनी पड़ती है तभी वह आत्मजयी होता है, शक्ति के स्रोत तभी उसमें खुलते हैं। □

मंत्रदोष

मंत्र की साधना करने के लिए पहले हम मंत्र के संबन्ध में जान लें। मन्त्र वर्ण या पद समूह को कहते हैं। वर्ण से आशय बोज से है। साधक के लिए मन्त्र-शक्ति पुरुष का रूप रहा करता हैं इसलिए जैसे पुरुष में दोष होते हैं उसी तरह मन्त्र में भी संघटनात्मक अथवा रचनात्मक दोष होते हैं। दूषित मन्त्र सिद्धिप्रद नहीं होता।

छिन्न—जिस मन्त्र में आदि मध्य और अन्त में 'ह्रीं' अथवा य दीर्घ स्वर युक्त हो अथवा ये ही बोज तीन, चार, पांच बार हों वह छिन्न कहलाता है।

रुद्ध—जिन मन्त्रों में 'ल' कार आदि मध्य व अन्त में हो वहां रुद्ध दोष होता है।

शक्तिहीन—जो मन्त्र ओम्, ह्रीम्, हुम्, श्रीं अथवा फ्रं से रहित हों वे शक्तिहीन होते हैं।

पराङ्मुख—मन्त्रों में प्रारम्भ में ह्रीं, मध्य में क्लीं और अन्त में क्रों हुआ करता है।

बधिर—हं सः (अजपा मन्त्र) जिनके आदि, मध्य या अन्त में न हो वे बधिर मन्त्र होते हैं।

अन्ध या नेत्रहीन मन्त्र—पांच अक्षर का किन्तु 'र' 'ह' या 'स' से रहित हुआ करता है। नेत्रहीन मन्त्र रोग व दुःख को देने वाला होता है।

कीलित मन्त्र—इनमें आदि, मध्य वा अन्त में हं, सः हों, ऐं, फ्रं, हूम्, ह्रीं, नमः में से एक भी नहीं होता है। ग्रन्थान्तर में कीलित का लक्षण बताया है कि बोज मन्त्र से रहित मन्त्र कीलित होता है वचनान्तर के अनुसार जो अन्य बोज से आक्रान्त होता है वह कीलित कहलाता है। अन्य बोज से तात्पर्य उपरिर्वाणित बोज मन्त्रों से अतिरिक्त है।

ये दोष या आगे बताये जाने वाले अन्य दोष मन्त्र को विरूप या अनुपयुक्त सिद्ध करते हैं। इनमें जिन बीजों को नियत स्थानों पर निषिद्ध माना है अथवा जिन बीजों के कारण मन्त्र दूषित हो जाता है उनका परित्याग करना ही श्रेयस्कर है, मन्त्र शास्त्र इतना विस्तृत है कि इसमें एक ही प्रयोजन के लिये अनेक मन्त्र मिल जाएंगे। जो मन्त्र सिद्ध हैं वे आर्ष शक्ति के कारण दूषित होते हुए भी शक्ति सम्पन्न अतएव उपयोगी मान लिये गए हैं। समर्थ और शास्त्रज्ञ गुरु ने जिस मन्त्र का उपदेश दिया है उसके सम्बन्ध में इस प्रकार का विचार नहीं किया जाता जैसे एक कुशल चिकित्सक किसी रोगी को विष देता है तो वह उसके लिये हितकर रहता है। विष का सामान्य दोष वहां गुणकारक हो जाता है। जैसे दो ऋण गुणित होने पर धन हो जाते हैं।

मन्त्रों के अन्य दोष

१. स्तंभित मन्त्र के मध्य में हुम्, या ल मध्य में एक बार और अन्त में दो बार होता है। स्तंभित मन्त्र सिद्धि में बाधा उत्पन्न करता है।

अन्य ग्रन्थ में—बीच में इन्द्रबीज ल एक बार और अन्त से पहले दो बार न होने से स्तंभित माना गया है।

२. दग्ध जिस मन्त्र में य रेफ (र) से युक्त होकर अन्त में आता है अथवा कहीं भी सात बार आता है वह दग्ध कहलाता है।

३. त्रस्त मन्त्र वह होता है जिसके आदि मध्य और अन्त में 'हुम' का प्रयोग होता है। त्रस्त मन्त्र सिद्धिप्रद नहीं हुआ करता।

४. भीत जिसके प्रारम्भ में प्रणव अथवा सः बीज न हों वे मन्त्र भीत कहलाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक मन्त्र में प्रणव, हुं, या सः में से किसी एक बीज का प्रयोग किया ही जाए। नरसिंह, गणपति, विष्णु और शिव मन्त्रों में, प्रणव, मन्त्र के अंग के रूप में जुड़ा रहता है जिसका उपदेश ऋषियों ने यथावसर किया है किन्तु जो मन्त्र विद्या (मन्त्र) हैं उनमें शक्ति बीज को प्रारंभ में लगाये जाने की व्यवस्था है।

५. मलिन मन्त्र वे होते हैं जिनके आदि मध्य और अन्त में 'म' चार बार हुआ करता है।

६. तिरस्कृत मन्त्रों में 'द' अथवा 'हुम' मध्य में एक बार तथा

अन्त में दो बार रहा करता है। मतान्तर में—जिसके मध्य में 'द' और अन्त में दो बार 'फट्' का प्रयोग होता है वह मन्त्र तिरस्कृत कहा जाता है।

७. भेदित मन्त्र में मध्य में 'वौषट्' अन्त में 'वषट्' तथा मध्य में 'भ्यः' दो बार होता है। मतान्तर से—प्रारंभ में ओम्, मध्य में दो बार 'फट्' तथा अन्त में 'वषट्' का प्रयोग रहता है।

८. सुषुप्त मन्त्र तीन अक्षरों का हो किन्तु उसमें हं, या सः या प्रणव मन्त्र (ओम्) न हो।

९. मन्दोमन्त प्रारंभ में जिसके पांच बार 'फट्' हो और सत्रह या अठारह अक्षरों का हो।

१०. मूर्च्छित मन्त्र वह होता है जिसके मध्य व अन्त में 'फट्' का प्रयोग होता है।

११. हतवीर्य मन्त्र में आदि, मध्य व अन्त में चार 'फट्' का प्रयोग रहता है।

१२. हीन मन्त्र अठारह या उन्नीस अक्षरों का होता है।

१३. तार मन्त्र वह होता है जिसमें उन्नीस अक्षर होते हैं तथा प्रारंभ में प्रणव क्रोम् अथवा हल्लेखा का प्रयोग होता है।

१४. से १८ सात अक्षर वाला मन्त्र बाल कहलाता है बाल का अर्थ दृढ़ता किंवा सामर्थ्य में कम होता है आठ अक्षर का कुमार और सोलह अक्षर का युवा। तथा चालीस अक्षर प्रौढ़ एवं तीस, पचास, साठ, एक सौ, एक सौ चार अक्षरों वाला वृद्ध कहलाता है। प्रौढ़ मन्त्र अपनी तेजस्विता में प्रखर होते हैं, युवा मन्त्रों में दर्प रहा करता है और वृद्ध मन्त्र क्षत्र कर्मों में प्रयोग करने योग्य होते हैं।

१९. निस्त्रिंश मन्त्र नौ अक्षर वाला होता है और इन नौ अक्षरों में प्रणव मन्त्र आदि अथवा अन्त में जुड़ा होता है।

२०. निर्बोज मन्त्र मध्य में 'वषट्' 'हुम्' 'फट्' में से कोई एक, अन्त में 'नमः' अथवा स्वाहा हो तथा हं सः से रहित होता है।

२१. सिद्धिहीन मन्त्र में 'फट्' का छः बार प्रयोग होता है।

२२. दस अक्षरवाला मन्त्र मंद अथवा निस्तेज होता है।

२३. एक-एक अक्षर वाला मन्त्र कूट अथवा निरंश कहलाता है।
२४. दो अक्षर वाला मन्त्र सत्वहीन होता है।
२५. किसी भी बीज मन्त्र से रहित हो और चार अक्षर का हो वह केकर कहलाता है।
२६. छः अक्षर का मन्त्र बीजहीन होता है।
२७. साढ़े सात या साढ़े बारह अक्षर वाला मन्त्र धूमित कहलाता है।
२८. दृप्त मन्त्र में कोई पद धातु-क्रिया-पद के अर्थ को बाधित किया करता है अथवा उसको किसी विशिष्ट अर्थ का बोधक बना देता है या कोई निरर्थक शब्द प्रयुक्त हो जाता है।
- ग्यारह, तेईस या पच्चीस अक्षरवाला मन्त्र भी दृप्त कहलाता है।
२९. साढ़े तीन, बीस, इक्कीस और तीस अक्षर का मन्त्र आलिंगित कहा जाता है।
३०. बत्तीस अक्षर के मन्त्र की मोहित संज्ञा होती है।
३१. चौबीस अथवा सत्ताईस अक्षर के मन्त्र को क्षुधार्त कहते हैं।
३२. छब्बीस, उन्तीस और छत्तीस अक्षरवाले मन्त्र को अंगहीन कहा जाता है।
३३. अट्ठाईस और इकतीस अक्षरवाला मन्त्र अतिक्रुद्ध कहलाता है।
३४. तीस और तैंतीस अक्षरवाले मन्त्र को अतिक्रूर कहते हैं।
३५. चौवालीस से लेकर तिरैसठ तक के अक्षर वाला मन्त्र सव्रीड होता है।
३६. छप्पन अक्षरवाला मन्त्र शान्त मानस होता है।
३७. छप्पन से निन्यानवे अक्षर तक का मन्त्र स्थानभ्रष्ट कहा जाता है।
३८. तेरह अथवा पन्द्रह अक्षर के मन्त्र विकल कहलाते हैं।
३९. नवासी, इक्यानवे, एक सौ, डेढ़ सौ, एक सौ अस्सी, दो सौ और तीन सौ अक्षरों वाले मन्त्र निःस्नेह कहे जाते हैं।
४०. चार सौ से एक हजार तक अक्षरों वाले मन्त्र अतिवृद्ध कहलाते हैं।
४१. एक हजार से अधिक अक्षरवाले मन्त्र पीड़ित कहे जाते हैं।

४२. दो हजार से अधिक अक्षरवाले मन्त्रों को स्तोत्र अथवा विद्या कहते हैं।

मन्त्रों के इन दोषों की समीक्षा करने पर इस निष्कर्ष को प्राप्त करते हैं कि ३, ४, ५, ६, १२, १४, २२, २७, ३४, ३५ तथा ३८ से ४३ तक अक्षर वाले मन्त्र निर्दोष होते हैं। इनमें यदि बीजाक्षर व पल्लव के कारण होने वाले दोष न रहें तो ये सर्वथा निर्दोष बन जाते हैं।

ये दोष अहितकर ही होते हैं ऐसी बात नहीं है इनमें भी कई दोष इस प्रकार के होते हैं जो विशिष्ट प्रयोजनों में उपयुक्त रहते हैं जैसे मारण कर्म में अतिक्रूर, दृप्त व निःस्नेह मन्त्र तथा विद्वेषण में अतिक्रुद्ध व निःस्नेह मन्त्र अधिक अनुकूल रहते हैं। क्षुद्र कर्मों में वृद्ध मन्त्र, सम्मोहन में सत्रीड व मोहित, वशीकरण में युवा मन्त्र अधिक अच्छा काम करते हैं—यह मेरा मत है, जिसे मेरी अल्पज्ञता भी कहा जा सकता है किन्तु यह असंगत एवं निराधार नहीं है।

इसी विवेचन से यह तथ्य भी प्रकट होता है कि किन्हीं मन्त्रों में विशेषकर नवार्ण जैसे मन्त्रों में प्रणव जोड़ने से उसका स्वरूप बदल जाता है और वह दशार्ण हो जाता है, दशार्ण का परिणाम मन्दता दोष होता है अर्थात् जहां नवार्ण भास्वर और बलो था वहीं वह मन्द हो गया। हमारे शास्त्रकारों ने मन्त्र का ग्रन्थन करते समय इन आधारों को दृष्टिगत रखा था क्योंकि इन दोषों के द्रष्टा और उपदेष्टा वे रहे थे इसलिए बीज और प्रणव के संयोजन में उन्होंने आवश्यकता एवं उपयोगिता को दृष्टिगत रखा ही था।

जिस प्रकार सर्वशुद्ध मन्त्र किसी भी प्रयोजन के लिए ग्रथित है तथा अपनी निर्दोष रचना के कारण वे शीघ्र फल देने वाले होते हैं उसी प्रकार दग्ध, मलिन हतवीर्य, मूर्च्छित जैसे मन्त्र प्रकृत्या दूषित हैं और उनकी अर्थहीनता के साथ ही सम्भव है, साधक के लिये भी प्रतिकूल प्रभाव देने वाले सिद्ध हों। कुछ मन्त्र ऐसे होते हैं जिनमें दो या तीन तरह के दोष एक साथ हों जैसे तीस अक्षर वाला मन्त्र आलिंगित भी है, वृद्ध भी है और अतिक्रूर भी है पर यह त्रिंशाक्षर मन्त्र अपने दोषों के कारण क्षुद्र अभिचारादि कर्मों में उपयुक्त है। अठारह अक्षर वाला मन्त्र हीन भी है और मन्दोत्त भी और ये दोनों दोष ऐसे हैं जो इस प्रकार के मन्त्र को निरर्थक सिद्ध करते हैं।

मन्त्र साधना करने के लिये मन्त्र और साधक के बीच बनने वाले सम्बन्धों को जान लेना भी आवश्यक रहता है। मित्र, शत्रु, उदासीन और स्व भावों का विवेचन करने से सुविधा रहती है अन्यथा हम उस मन्त्र की साधना करते रहें जिसके हमारे साथ रिपुभाव है तो मन्त्र सिद्ध नहीं होगा। इस पर पहले हम तत्त्वगत वर्गीकरण के आधार पर विचार करेंगे। देखने की विधि यह है कि साधक अपने प्रचलित नाम का पहला अक्षर और मन्त्र के पहले अक्षर के तत्त्व को देखकर आगे वाली सारणी में देख लें कि उनके बीच कैसा सम्बन्ध बन रहा है। इसमें पहले साधक के नामाक्षर का तत्त्व देखा जाएगा। नाम जन्म के अक्षर (जन्म नक्षत्र के चरण) के अनुसार नहीं लिया जाएगा बल्कि बोलता नाम ही ग्रहण किया जाएगा। बोलते नाम के लिये शास्त्र ने स्पष्ट किया है कि जिस नाम से व्यक्ति सोया हुआ हो तो जग जाए, दूर रहने पर बोल पड़े, तथा अन्यमनस्क रहने पर भी जिस नाम से बोल पड़े वह बोलता नाम होता है। □

अक्षरों का तत्त्वानुसार वर्गीकरण

आकाश तत्त्व के अक्षर—अ, ए, ह, ड, ङ, ण, न, म, श ।

वायु तत्त्व के अक्षर—इ, ऐ, य, क, च, ट, त, प, ष ।

तेजस् तत्त्व के अक्षर—उ, ओ, व, ख, छ, ठ, थ, फ, स ।

जल तत्त्व के अक्षर—ऋ, औ, र, घ, झ, ढ, ध, भ ।

पृथ्वी तत्त्व के अक्षर—लृ, ल, ग, ज, ङ, द, ब ।

इनकी मित्रता का सम्बन्ध इस प्रकार है ।

वायु तत्त्व पर किसी साधक का नाम है और उसके द्वारा सिद्ध किये जाने वाले मन्त्र का प्रथम अक्षर भी इसी तत्त्व में निर्दिष्ट वर्णों में से किसी वर्ण से प्रारम्भ होता है तो दोनों का एक ही कुल हुआ । अग्नि तत्त्व के साथ इसकी मित्रता रही । जल तत्त्व उदासीन और पृथ्वी तत्त्व के साथ शत्रुभाव रहा । इसी तरह अग्नि तत्त्व के लिये अग्नि स्वकुल, वायु मित्र, पृथ्वी उदासीन और जल शत्रु रहा है । जल तत्त्व के लिये जल स्वकुल, पृथ्वी मित्र, वायु उदासीन और अग्नि शत्रु है । पृथ्वी तत्त्व के लिये पृथ्वी स्वकुल, जल मित्र, वायु उदासीन रहा ।

ज्योतिष में जिस प्रकार ग्रहों के सम्बन्ध होते हैं—कुछ ग्रहों में परस्पर शत्रुता, कुछ में परस्पर मित्रता, कुछ में एक की दूसरे के प्रति मित्रता किन्तु दूसरे की उदासीनता रहा करती है उसी तरह यहां भी है । जैसे वायु और अग्नि में परस्पर मित्रता है तो पृथ्वी और जल में परस्पर मित्रता है, अग्नि और जल परस्पर शत्रु हैं किन्तु पृथ्वी तत्त्व की तेजस् तत्त्व के साथ शत्रुता है । पर तेजस् तत्त्व पृथ्वी तत्त्व के प्रति उदासीन भाव रखता है ।

आकाश तत्त्व का शेष तत्त्वों के साथ सामान्य भाव है । साधना के लिये स्वकुल और मित्रभाव उपयुक्त रहता है उदासीन सम्बन्धों में सफलता की संभावना क्षीण रहती है और रिपुभाव में प्रतिकूल प्रभाव रहता है । उदाहरण

के लिये गोपीकृष्ण एक मन्त्र की साधना करना चाहते हैं जिसका प्रथम अक्षर स है। गोपी का प्रथमाक्षर ग पृथ्वी तत्त्व है और स तेजस् तत्त्व इसलिये दोनों में रिपुभाव रहा, यही स्थिति परिवर्तित होकर अर्थात् सत्य नारायण 'ग' अक्षर से प्रारम्भ होने वाला कोई मन्त्र सिद्ध करना चाहेंगे तो इनमें उदासीनता का सम्बन्ध बनेगा।

जिस प्रकार विवाह में गण, नाड़ी, तारा आदि का विचार किया जाता है उसी तरह यदि गण विरोध मिलाकर उनके गुणों को देख लिया जाए तो अच्छा रहे। पंचांग में इसके लिए बड़ी-सी सारणी होती है जिसमें एक तरफ वर के नक्षत्र दिये जाते हैं दूसरी तरफ कन्या के, वर में साधक अपने नक्षत्र को देखे और कन्या वाले पक्ष में मन्त्र के नक्षत्र का विचार करे। इस सारणी में गण, योनि, नाड़ी, तारा भकूट, वर्ण आदि का पूरा हिसाब करके गुणांकों का योग दिया रहता है। यह योग सोलह से कम रहने पर निन्दित, सोलह से बीस तक मध्य और इससे अधिक उत्तम रहता है। □

अक्षरानुसार राशि वर्गीकरण

अ, आ, इ, ई, मेष; उ, ऊ, ऋ वृष; ॠ, लृ, लृ मिथुन; ए, ऐ कर्क;
ओ, औ सिंह; अं, अः, श, ष, स, ह, क कन्या; क, ख, ग, घ, ङ, तुला; च, छ,
ज, झ, ञ वृश्चिक; ट, ठ, ड, द, ण धनु; त, थ, द, ध, न, मकर; प, फ, ब,
भ, म कुम्भ; य, र, ल, व, स मीन।

वर्गों का नक्षत्रानुसार वर्गीकरण शारदा तिलक की पदार्थदर्श टीका के अनुसार तथा राशियों का वर्गीकरण प्रपंचासार तंत्र के अनुसार किया गया है। यह विभाजन ज्योतिष के अनुसार न होकर तांत्रिक दृष्टि से निर्धारित है। हां, इनके सम्बन्ध-संयोजन की पद्धति ज्योतिष के अनुसार ही है। □

अक्षरों का नक्षत्रानुसार वर्गीकरण

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	बृहस्पति	शुक्र	शनि
मित्र	च, म, म	नु, सू	सू, चं, गु	शु सू	सू, च, म	नु, श	बु, शु
सम	नु	मं, गु, शु, श	श, शु	मं, श, गु	श	मं, गु	नु
शत्रु	श, शु	-	कु	चं	बु, शु	सू, चं	सू, चं, मं

अ, आ, आश्विनी; इ, भरणी; ई, उ, ऊ कृतिका; ऋ, ॠ, लृ, लृ रोहिणी; ए मृगशिरा; ऐ आर्द्रा; ओ, औ पुनर्वसु; क पुष्य; ख, ग आश्लेषा; घ, ङ., मघा; च पूर्वा फाल्गुनी; छ, ज उत्तरा फाल्गुनी; झ हस्त; ट ठ चित्रा; ड स्वाति; ढ, ण विशाखा; त, थ, द अनुराधा; ध ज्येष्ठा; न, प, फ मूल; व पूर्वाषाढ़; भ उत्तराषाढ़; म श्रवणा; य, र घनिष्ठा; ल शतभिषा; वः श पूर्वा भाद्रपदा; प, स, ह, क्ष उत्तराभाद्रपदा; अं, अः जा रेवती।

राशि के अनुसार साधक और मन्त्र के रशीश का परस्पर सम्बन्ध भी देख लेना चाहिए। जो थोड़ा-सा भी ज्योतिष का ज्ञान रखते हैं वे जानते हैं कि सूर्य और चन्द्र को छोड़कर शेष ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी माने जाते हैं। राशियां क्रमशः मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन होती हैं जिसके स्वामी (रशीश) क्रमशः मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति शनि, शनि और बृहस्पति हैं। □

काकणी विचार

काकणी ज्योतिष का अति प्रचलित सिद्धान्त है। तंत्र शास्त्र में काकणी की दृष्टि से भी मन्त्र और साधक के ऋण-धन शोधन का विचार है। इस गणित में जिसके अंक अधिक होते हैं वह ऋणी कहलाता है इसलिये ऋणी मन्त्र ही ग्राह्य है क्योंकि ऋणी मन्त्र साधक को फलप्रद होता। कोई भी मन्त्र ऋणी क्यों रहता है इस सम्बन्ध में तंत्र का स्पष्टीकरण है—“मनुष्य का जन्म, कर्म और विपाक की एक लम्बी शृंखला है, इसमें पूर्वजन्म में व्यक्ति ने किसी मन्त्र का जाप किया हो और किसी प्रकार की कमी या पाप के कारण मन्त्र ने अपना फल न दिया हो वे मन्त्र ऋणी होते हैं और ऐसे मन्त्रों की साधना करने पर वे इस जन्म में सिद्धिदायी हुआ करते हैं।”

प्रत्यक्ष विश्वासो अपने अल्पज्ञान को विवशता के कारण इस तथ्य से सहमत न हो सकें किन्तु इसमें सन्देह नहीं है। हम व्याहारिक जीवन में भी ऐसी घटनायें देखते हैं जिनमें कोई व्यक्ति हमें अकारण, अयाचित रूप में कुछ धन दे जाता है या हम कहीं पर गड़ा हुआ धन पा लेते हैं अथवा कई लोग हमारे साथ उपकार कर जाते हैं। इस तथ्य को भगवान् कृष्ण भी कहते हैं।

“बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन,
तान्यहं वेद्मि सर्वाणि न त्वं वेत्स्य परंतप”,

हमारा जीवन वास्तव में एक सुदीर्घ कर्मयात्रा है जिसमें विभिन्न देह धारण के पड़ाव आए हुए रहते हैं तथा यह क्रम अभी और निरन्तर रहेगा। ऐसी स्थिति में यह शिकायत करना मूर्खता ही है कि हमारे द्वारा किए गए मन्त्रजप का कोई फल नहीं मिला। किसी भी मन्त्र को जप करना एक क्रिया है और क्रिया कर्म (फल) के रूप में परिणमित होती ही है इसलिए हमारे किए मन्त्र जप का फल तो हमें निश्चय से मिलेगा ही, यह दूसरी बात है कि

वह फल हमें अभी मिल जाए या किसी पाप-शाप के कारण देर से मिले, यह देर जन्मान्तर तक की भी हो सकती है। शुद्ध विधि, पर्याप्त मात्रा, शुद्ध सत् आचरण पूर्वक करने पर मन्त्र फलीभूत होता ही है, इसके विपरीत मन्त्र के उच्चारण में या अन्य विधि विधान में त्रुटि रहने से हम दोषभागी बनते हैं और मन्त्र का शाप हमें मिलता है। इस रहस्य से वही परिचित हो सकता है जो इस संसार और अपने जीवन को प्रकृति का सुनियोजित एवं नियमबद्ध व्यवहार मानता है तथा इस सारे क्रिया व्यापार में एक चेतन सत्ता का अनुभव करता है और देवत्व एवं दानत्व के प्रति अत्यन्त संवेदनशील बन गया है। प्रस्तुत सिद्धांत के अनुसार स्वाभाविक है कि हमारा जीवन अनेक ऋणों को लेने व निपटाने के निमित्त हुआ करता है। यह भिन्न बात है कि इनमें कुछ अनायास एवं आवश्यक होते हैं तो कुछ को हमें ढूंढ़ना पड़ता है और प्रयास करना पड़ता है।

काकणी पद्धति में अ, आ, इ, ई, आदि सोलह स्वरों (मातृकाओं) का एक, कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ.) का दो, चवर्ग का तीन, टवर्ग का चार, तवर्ग का पांच, यवर्ग का छह, य र ल व का सात, श, ष, स, ह का आठ ध्रुवांक मानते हैं। साधक और मन्त्र की काकणी देखने के लिए पहले साधक के वर्ग का ध्रुवांक देखेंगे उसे दो से गुणा करके उसमें मन्त्र का ध्रुवांक जोड़ देंगे यह साधक की काकणी हुई मन्त्र के वर्ग से मन्त्र ध्रुवांक को दो से गुणा करके साधक का ध्रुवांक जोड़ देंगे। इनमें जिसके अंक अधिक होंगे वह ऋणी रहेगा और मन्त्र का ऋणी रहना ही उत्तम रहा करता है। जब मन्त्र और साधक एक ही वर्ग के हों तो बराबर रहते हैं इस प्रकार के मन्त्र की साधना करने में जपादि अधिक मात्रा में किए जाते हैं तब वह मन्त्र ऋणी बनता है। उदाहरण के लिए श्यामसुन्दर ह से प्रारम्भ होने वाला हनुमान मन्त्र साधना करना चाहते हैं इनमें श्याम के श का सातवां वर्ग होने से ध्रुवांक सात हुआ हनुमान का ह आठवां वर्ग रहने से उसका ध्रुवांक आठ हुआ इन दोनों के योग से श्यामजी की काकणी—सात गुणा दो—चौदह हुए उनमें मन्त्र के ध्रुवांक आठ को जोड़ देने पर बाईस हुए। मन्त्र की काकणी में मन्त्र के ध्रुवांक आठ को दो से गुणा करके श्यामजी के ध्रुवांक सात जोड़ देने से तेईस हुए। इस काकणी में हनुमान मन्त्र ऋणी हुआ। आठ से अधिक हो जाने पर आठ का भाग दे देते हैं। □

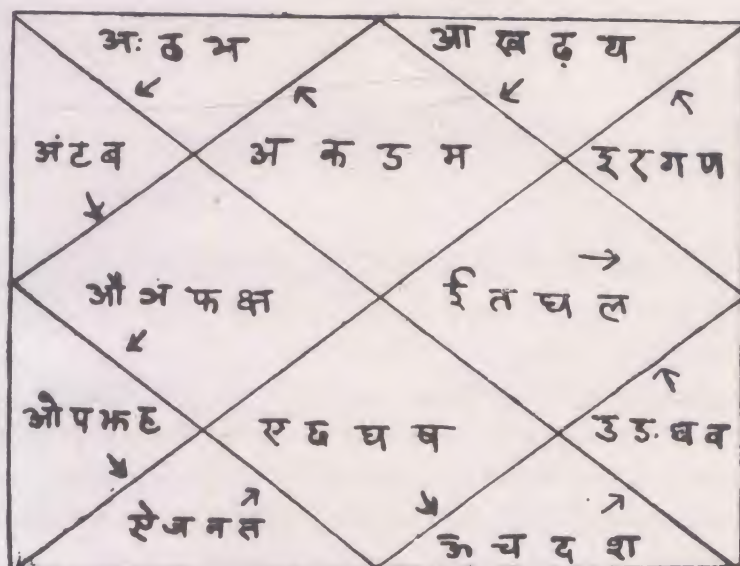
मंत्र का सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध व अरि विचार

भ, क, थ	आ, ख, द	इ, ग, ध	ई, घ, न
उ, ऊ, प	ऊ च फ	ऋ छ ब	ॠ ज भ
लृ ऋ म	लृ अ यं	ए ट र	ऐ ठ ल
ओ उ व	औ ढ श	अं ण ष	अः त स ह

उपर्युक्त चक्र को देखने की विधि यह है कि इन कोष्ठकों में क्रमशः सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, अरि भाव माना जाता है। साधक के अक्षर वाले कोष्ठक से मन्त्र के प्रथमाक्षर वाला कोष्ठक जिस क्रम में आए मन्त्र के साथ वही भाव जुड़ता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी का नाम चौथी पंक्ति के कोष्ठक में है और मन्त्र का प्रथमाक्षर तीसरी में है तो उससे गिनने पर वह चौथा रहेगा। उदाहरण के लिए श्यामसुन्दर 'हम् पवननन्दाय स्वाहा' यह मन्त्र सिद्ध करना चाहते हैं। श्याम का श दूसरे कोष्ठक में है और ह उससे तीसरे कोष्ठक में इसलिए यह मन्त्र उनके लिए सुसिद्ध रहा। सुसिद्ध का अर्थ होता है—उत्तम, सिद्ध—अति उत्तम, साध्य—मध्यम और अरि—निन्दित होता है।

सिद्ध-साध्य देखने का दूसरा तरीका

इस चक्र में साधक अपने नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र के प्रथमाक्षर तक गिनें। गिनने में वह कोष्ठक भी गिना जाएगा जिसमें वह अक्षर है। गिनने का



क्रम दक्षिणावर्त (एण्टीक्लाक वाइज्) रहेगा। मन्त्र का प्रथमाक्षर यदि (एक ही) पहले, पांचवें और नवें स्थान (कोष्ठक) में आए तो सिद्ध। दूसरे, छठे, दसवें स्थान में आए तो साध्य। तीसरे, सातवें, ग्यारहवें स्थान में आने पर सुसिद्ध और चौथे, आठवें, बारहवें स्थान में आने से अरि कहलाता है। इनके फल पहले वाले प्रकार में लिख दिये हैं। इस चक्र को अकडम चक्र भी कहा जाता है। उदाहरण के लिए श्याम के लिए हनुमान मन्त्र दसवें स्थान में होने से साध्य है। यह गणितीय मिलान आज के व्यक्ति के लिए जटिल है और इसे पढ़ने के पश्चात् यह शंका होना भी स्वाभाविक है कि दोषों से मुक्त मन्त्र का इन ऋण-धन व सिद्ध, साध्यादि कसौटियों से पार पाना असम्भव प्रायः है किन्तु ऐसा नहीं है। जिस व्यक्ति को हम गुरु मानने जा रहे हैं, वह इन सारे विधानों में निष्णात है, उसकी दृष्टि से ये दोष ओझल नहीं हो सकते तथा मन्त्र शास्त्र की विशालता को देखते हुए यह सहज रूप से कहा जा सकता है कि उसमें व्यक्ति के लिए निर्दोष रूप से सर्वशुद्ध मन्त्रों की कमी नहीं है। इस गणना में प्रणव को नहीं लेंगे। □

जिन मन्त्रों में ऋण धनादि शोधन की आवश्यकता नहीं

प्रणव, हंसः, दो या तीन बीजाक्षर वाला, पांच अक्षर का, तथा आठ अक्षर का मन्त्र ऋण-धन व सिद्ध-साध्य आदि के अनुसार विचारणीय नहीं होता अर्थात् इन मन्त्रों में उपर्युक्त मिलान नहीं किया जाता। कूट मन्त्र (एकाक्षर) तीन पांच, सात नौ और बारह अक्षर वाले मन्त्रों में भी यह विचार नहीं किया जाता।

गरुड़, सूर्य, विष्णु, बुद्ध, जैन और महाकूट मन्त्रों में इनका विचार नहीं करते। जो मन्त्र गुरु द्वारा उपदिष्ट हैं, जो योगिनी प्रदत्त हैं, जो स्वप्न में निर्दिष्ट हैं, जिस व्यक्ति की किसी देवता विशेष के मन्त्र विशेष में स्वाभाविक भक्ति है वे मन्त्र भी सिद्धिप्रद रहते हैं, उनमें भी अरि मित्रादि का विचार नहीं किया जाता। त्रिपुरा, नरसिंह, वाराह के मन्त्रों में तथा माला मन्त्रों में भी यह विचार नहीं किया जाता।

इन दोषों के निराकरण के लिए ह्रीं, श्रीं, क्लीं इनमें से किसी बीज मन्त्र को प्रारम्भ में जोड़ने से अथवा इनको अन्त में और श्रीं को प्रारम्भ में लगाने से दोष शान्त हो जाता है। प्रारम्भ व अन्त में लगाने से भी मन्त्र के दोष शान्त हो जाते हैं। ह्रीं बीज युक्त मन्त्र शीघ्र फल प्रदान करने वाला होता है बीज मन्त्रों में विपर्यय करके भी ऋण धन, सिद्ध-अरि आदि दोषों को दूर किया जाता है किन्तु इसके लिए मर्मज्ञ गुरु ही सक्षम है। तांत्रिक-दृष्टि से सुसाध्य निश्चित संख्या के जप से, सिद्ध दुगुने जप से, साध्य चौगुने जप से सिद्ध होता है। □

मासों के फल

वेलाख—धनप्रद; ज्येष्ठ—मृत्यु; आषाढ—पुत्र; श्रावण—शुभ; भाद्रपद—ज्ञान-हानि; आश्विन—सर्वसिद्धि; कार्तिक—ज्ञानसिद्धि; मार्ग-शीर्ष—शुभ; पौष—दुःख; माघ—मेघावृद्धि; फाल्गुन—वशीकरण, चैत्र—दुःसह कारक होता है।

ऐश्वर्य, शान्ति, पुष्टिकर मन्त्रों की साधना शुक्ल पक्ष में और मुक्तिप्रद मन्त्रों की साधना कृष्ण पक्ष में प्रारंभ की जाती है। □

तिथि विचार

दूज, पंचमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी और पूर्णिमा अनुकूल रहती है। यों लक्ष्मी के मन्त्रों के लिए दूज, गौरी या शक्ति मन्त्रों के लिए तीज, अष्टमी व चतुर्दशी (नवमी भी) सरस्वती मन्त्रों के लिए तेरस, गणपति मन्त्रों के लिए चतुर्थी, सूर्य मन्त्रों के लिए सप्तमी, विष्णु मन्त्रों के लिए द्वादशी, शिव मन्त्रों के लिए चतुर्दशी और ब्रह्मा के मन्त्रों लिए अमावस्या अनुकूल रहती है।

नक्षत्रों में रोहिणी, रेवती, पुष्य, तीनों उत्तरा, ज्येष्ठा, मघा, स्वाति, अनुराधा, अश्विनी, मूल, श्रवणा, चित्रा, हस्त, घनिष्ठा, पुनर्वसु, मृगशिरा अनुकूल माने जाते हैं।

एकम तिथि को पूर्वाषाढा नक्षत्र हो, पंचमी को कृत्तिका, षष्ठी को पूर्वाभाद्रपदा, दशमी को रोहिणी, द्वादशी को सारप और त्रयोदशी को अर्यमा हो तो त्याज्य रहती हैं। सामान्यतया शनि और मंगलवार ग्राह्य नहीं हैं। □

षट्कर्मनुसार ऋतु-कालादि विचार

ऋतु शान्ति पुष्टि के अनुष्ठान हेमन्त ऋतु में, वशीकरण-वसन्त में, स्तंभन-शिशिर में, विद्वेषण (मारण भी) ग्रीष्म में, उच्चाटन-वर्षा में, मारणा-शरद् ऋतु में किया जाता है।

समय वशीकरण—पूर्वाह्न, विद्वेषण—उच्चाटन-मध्याह्न, शान्ति-पुष्टि—तीसरे प्रहर, मारण—संध्या, स्तंभन—अर्धरात्रि, आकर्षण—भोर में किया जाना चाहिए।

तिथिवार शान्ति कर्मों में दूज, तीज, पंचमी, सप्तमी तिथि व बुध, गुरुवार; पुष्टिकर कर्मों में चतुर्थी, षष्ठी, सप्तमी, त्रयोदशी तिथि तथा सोमवार, गुरुवार; आकर्षण कर्म में अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी तिथि और विद्वेषण कर्म में एकम्, नवमी, पूर्णिमा, अमावस्या तिथि और रविवार, शनिवार; उच्चाटन में कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तिथि शनिवार, रविवार; मारण कर्म में कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी अमावस्या तिथि एवं शनिवार, रविवार ग्राह्य होते हैं।

मंत्रोपासना में मन्त्र महत्त्वपूर्ण एवं केन्द्र बिन्दु होता है। प्रत्येक मन्त्र में ऋषि, छन्द और देवता (बीज, शक्ति) अनिवार्य रूप से रहते हैं।

ऋषि इसके लिए तंत्र शास्त्र कहता है कि सारे मन्त्र परमेश्वर शंकर द्वारा उपदिष्ट हैं इसलिए परात्पर गुरु तो परम शिव हैं किन्तु जिन प्रातः स्मरणीयजनों ने मन्त्रों को साधित व शक्ति सम्पन्न किया, आविष्कृत किया, जिसने मन्त्र का दर्शन किया, साधना करके उसकी शक्ति को प्रकट किया व सिद्धि प्राप्त की वे ऋषि कहलाते हैं।

छन्द एक निश्चित यति को कहते हैं किन्तु जिस प्रकार वस्त्र हमारे शरीर को ढाँपे रहते हैं, रक्षित रखते हैं उसी तरह यह (यति, लय) भी देवता को छादित रखते हैं। 'छादनाद् छन्दः'—कहते हैं पुराने समय में मरणधर्मा संसार को देखकर मृत्यु में भयभीत देवताओं ने अपने को एक यति-राग-से ढंक

लिया था। मन्त्र मूलतः देवता का स्वरूप होता है और छन्द उसका नैसर्गिक विन्यास होता है इसलिए देवता की भव्यता छन्द से आवृत एवं भूषित होती है।

देवता मन्त्र का आकार होता है। मन्त्र के बोलने से जो कपन होते हैं उन निरन्तर कम्पनों से कई प्रकार की आकृतियाँ (विभिन्न मन्त्रों से विभिन्न प्रकार की) बना करती हैं। वे वास्तव में मन्त्र के स्वरूप हैं जिनको दिव्यता के कारण देवता कहा जाता है। यही एक कारण है कि देवताओं के विचित्र एवं विविध रूपाकार, अनेक मुख, अनेक नेत्र, अनेक हाथ आदि स्वरूपों में भी शक्ति एवं ईशत्व रहा करता है। प्रारंभ में ये रेखायें ही बनती हैं जो हमारी चेतनवादिता के कारण मांसल बनकर सशरीरी देवता हो जाते हैं।

बीज मन्त्र का प्राण होता है। प्रत्येक मन्त्र में, चाहे उसमें कोई बीज मन्त्र हो ही नहीं तदपि प्रच्छन्न रूप में बीज रहा ही करता है। किसी भी मन्त्र के प्रारंभ के अक्षर के अनुस्वार लगा देने पर बीज बन जाया करता है। अन्यथा सारा मन्त्र केवल पिण्ड, शरीर होता है।

शक्ति उस मन्त्र रूप देवता की महिमा है। यह भी देवता के साथ अनिवार्य रूप से रहती है। कई मन्त्रों में शक्ति के साथ कीलक भी जुड़ा रहता है। मन्त्र के ये पंचांग या षडंग हुआ करते हैं इनको विनियोग बोलते समय काम में लाते हैं तथा सृष्टि क्रम से किये जाने वाले न्यास में इनका प्रयोग किया जाता है। □

मन्त्रों की अक्षरानुसार संज्ञा

दो अक्षरों वाला मन्त्र कर्तरी, तीन अक्षर का सूची, चार का मुग्दर, पांच अक्षर का मुशल, छह अक्षर का शृंखला, सात का कवच, आठ और नौ का पर, दस का शक्ति, ग्यारह का परशु, बारह का चक्र, तेरह का कुलिश, चौदह का नाराच, अक्षर का भुशुण्डी तथा सोलह का पद्य कहलाता है।

उपर्युक्त प्रकार के मन्त्रों में—छेदन कर्म में कर्तरी, भेदन में सूची, भंजन में मुग्दर, क्षोभण में मुशल, बंधन में शृंखला, रक्षा में कवच, आकर्षण में शक्ति, विद्वेषण में पर, गए हुए को या किसी को प्राप्त करने (संधान) में कुलिश, सैन्य भेदन में नाराच, मारण में भुशुण्डी मन्त्र उपयुक्त रहता है। □

मन्त्र का स्वरूप

मन्त्रों में बीज ही प्राण होता है शेष पिण्ड होता है और पल्लव लिंग होता है। पल्लव से मन्त्र की जाति (लिंग) निर्धारित होती है। मुख्य रूप से मन्त्र दो प्रकार के होते हैं—सौम्य और सौर। सौम्य और सौर को अग्नीषोमात्मक भी कहते हैं। जिन मन्त्रों के देवता स्त्री रूपा होते हैं वे सौम्य तथा जिनके देवता पुरुष रूप होते हैं वे सौर होते हैं। ये ही मन्त्र स्त्रीलिंग, पुल्लिंग और नपुंसकलिंग के रूप में तीन प्रकार के होते हैं। जिन मन्त्रों के अन्त में हुम्, फट् (पल्लव) लगा होता है वे पुल्लिंग, जिनमें स्वाहा होता है वे स्त्रीलिंग तथा जिनमें नमः लगा होता है वे नपुंसकलिंग होते हैं। वशीकरण, उच्चाटन स्तम्भन अभिचार में पुल्लिङ्गी मन्त्र, शान्ति-पुष्टि में स्त्रीलिंग तथा शेष कर्मों में नपुंसकलिङ्गी मन्त्र सिद्धिप्रद रहा करते हैं।

मन्त्रों के अग्नीषोमात्मक दृष्टि से विचार करने पर ओम्, ह, क्ष इन अक्षरों की अधिकता रहने से वह मन्त्र आग्नेय कहलाता है, स, व अथवा अन्य अक्षरों की बहुलता रहने से सौम्य मन्त्र कहलाते हैं। इन्हीं सौम्य मन्त्रों में यदि पुल्लिङ्गी पल्लव जोड़ दिया जाए तो वे रुद्ररूप हो जाते हैं तथा सौर या रौद्रमन्त्र में सौम्य पल्लव जोड़ दिया जाए तो वे शान्त या सौम्य हो जाते हैं इसलिए अन्वर्थकता यही रहती है कि सौम्य मन्त्रों में शान्त या स्त्रीलिङ्गी पल्लव और सौर मन्त्रों में पुल्लिङ्गी या रौद्र पल्लव जोड़ना चाहिए।

स्वरों को अथवा केवल स्वरों से बनने वाले बीज मन्त्रों को सौम्य, क वर्ग से लेकर प वर्गान्त तक के व्यंजन सौर और य से क्ष तक नपुंसक या व्यापक कहते हैं। सौम्य मन्त्र कामप्रद, सौर मन्त्र अर्थप्रद, नपुंसक मन्त्र धर्म व मुक्तिप्रद रहा करते हैं।

इन आग्नेय, सौम्य और नपुंसक मन्त्रों के जपने के सम्बन्ध में तंत्र शास्त्र कहता है जिस समय हमारी बायीं नाक से श्वास चलती है तब सौम्य मन्त्रों

का जप उचित रहता है क्योंकि चन्द्र स्वर के चलने पर सौम तत्त्व जाग्रत और सौर तत्त्व सुप्त रहा करता है। इसी प्रकार जब दाहिना स्वर अर्थात् नासिका के दाहिने छिद्र से श्वास अधिक आने पर सौर मन्त्र का जप करना चाहिए क्योंकि आग्नेय स्वर चलने पर सौम्य स्वर सुप्त रहता है। जिस समय दोनों नासिका छिद्रों से स्वर चलता है उस समय मुक्तिप्रद मन्त्रों का जप करना ठीक रहता है। वैसे शास्त्रों की व्यवस्था के अनुसार सुषुम्णा स्वर (दोनों छिद्रों में समान श्वास) चलने पर ईश्वर स्मरण मुक्तिप्रद रहता है। मन्त्र ग्रहण अथवा किसी निमित्त से किये जाने वाले मन्त्रों का प्रारम्भ करने के लिए ज्योतिषीय दृष्टि भी मान्य रहती है। इस विचार के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण यह रहा है कि हमारे पर चन्द्रमा और सूर्य का बहुत प्रबल प्रभाव पड़ता है, वह प्रभाव किस प्रयोजन के लिए तथा कार्यविशेष के लिए साधना योग्य मन्त्र के शब्द संयोजन के लिए इन ग्रहों का प्रभाव अनुकूल रहेगा या प्रतिकूल यह विचार ही प्रमुख रहा है। यह तथ्य हम जानते ही हैं कि मोहन वशीकरणादि कर्मों के लिए निर्धारित मन्त्रों के संयोजन का सिद्धान्त तथा सूत्र है तथा उसके अनुसार उन वर्णों की आवृत्ति से हमारे मानस शरीर पर एवं प्रासंगिक रूप से हमारे भौतिक शरीर पर क्या प्रभाव पड़ेगा? इसका सूक्ष्मज्ञान मन्त्रोपदेष्टा ऋषियों को रहा था। इस निर्देश में महीना—सूर्य की स्थिति, नक्षत्र—चन्द्रमा की स्थिति, पक्ष एवं तिथि, सूर्य और चन्द्रमा की परस्पर तुलनात्मक दूरी एवं वार, सूर्योदय के समय ग्रह की वारवेला का सूचक है। □

साधना विधि

मन्त्र को जाग्रत करने के लिए दस प्रकार के संस्कार करने का विधान है। ये संस्कार गुरु द्वारा सम्पन्न हों तो अधिक अच्छा रहे वैसे भी ये जानकार व्यक्ति से समझने पड़ते हैं। इन सबमें अधिक महत्त्व दिया है मुद्रा को। तन्त्र का मत है कि कोई मन्त्र कैसा भी हो, उसके और साधक के बीच कैसा भी संबन्ध जुड़ रहा हो, योनिमुद्रा से साधना करने पर वे सारे दोष शान्त हो जाते हैं और मन्त्र चेतन हो जाता है।

योनिमुद्रा में पालथी जैसे मारकर बैठा जाता है जिसमें एक पैर की एड़ी को गुदा और लिंग के बीच योनि स्थान पर दबाकर तथा दूसरे पैर को उसके ऊपर रख कर बैठा जाता है। अन्यत्र **योनिमुद्रासन** के लिए लिखा है कि हाथों से दोनों घुटनुओं को पकड़ कर नासिका को घुटनों तक ले जायें और पूरक व कुंभक प्राणायाम करके मन्त्र का जप करें फिर सीधा होकर रेचक करे।

मन्त्र जप में, मन्त्र के मूल रूप के साथ ही पल्लव जोड़ने की व्यवस्था रहती है। मारण, उच्चाटन, विद्वेषण, विषनिवारण, ग्रहारिष्ट एवं भूतबाधा निवारण जैसे कार्यों में पल्लवयुक्त मन्त्र अधिक उपयुक्त रहते हैं।

योग—मन्त्र के प्रारम्भ में कर्म का ज्ञापन करना योग कहलाता है शान्ति, वशीकरण, पुष्टि, मोहन, दीपन, प्रायश्चित्त के निमित्त जो काम किए जाते हैं उनमें योगयुक्त मन्त्र प्रशस्त रहते हैं।

रोध—व्यक्ति के नाम के आवि मध्य व अन्त में मन्त्र को रखना रोध कहलाता है। मन्त्र के अभिमुखीकरण, व्याधिनिवारण, ज्वरमुक्ति, ग्रह शान्ति, सम्मोहन व विषापहरण के निमित्त किए जाने वाले प्रयोगों में रोध-युक्त मन्त्र अच्छे रहते हैं।

ग्रथन—नाम के प्रत्येक अक्षर के बाद एक मन्त्राक्षर हो उसे ग्रथन कहते हैं अथवा नाम, फिर मन्त्र फिर नाम इस प्रकार के मन्त्र को ग्रथन कहते हैं। शान्ति कर्म में ग्रथन युक्त मन्त्र ठीक रहते हैं।

संपुटित—किसी व्यक्ति विशेष या मन्त्र विशेष के पहले व बाद में जोड़ने की प्रक्रिया को संपुट कहते हैं, यह प्रक्रिया बहुत प्रचलित है। जिस प्रकार संपुट का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार ग्रथन रोध आदि होते हैं। इसमें व्यक्ति विशेष का नाम अथवा देवता का नाम जहाँ कहा गया है वहाँ मन्त्र व संपुट देने योग्य मन्त्र को पृथक्शः समझ लें। स्तम्भन, मृत्युञ्जय, रक्षा, तथा अन्य दिव्य कर्मों में संपुट विधि का प्रयोग किया जाता है।

विदर्भ—साध्य के नाम के प्रत्येक अक्षर के साथ मन्त्र के अक्षर को जोड़ने को विदर्भ कहते हैं। वशीकरण एवं पौष्टिक कर्मों में यह पद्धति काम में ली जाती है।

पल्लव—मन्त्र के अन्त में हुम् का प्रयोग बंधन, उच्चाटन एवं विद्वेषण कर्मों में; फट् छेदन में; हुम् फट् विघ्न और ग्रहबाधानिवारण के निमित्त; वौषट् पुष्टिकर कर्मों के लिए स्वाहा; पल्लव का प्रयोग बोधन कर्म के लिए किए जाने वाले मन्त्रों में किया जाता है, शान्ति, देवता प्रसन्नता में नमः; सम्मोहन, मृत्युञ्जय, पुष्टि में वषट् पल्लव लगाया जाता है।

जागतिक षट्कर्मों की साधना के लिए जो अनुष्ठान किए जाएं उनसे पहले रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा, दुर्गा, काली के मन्त्रों का जप कर लेना चाहिए। ये सम्मोहन, वशीकरण, आकर्षण, स्तम्भन, विद्वेषण, मारण (उच्चाटन) की देवियां हैं। पुरश्चरण में पहले जिन मन्त्रों को पहले जपने के लिए लिखा गया है वहाँ सात्विक, राजस एवं तामसिक रूप से वर्गीकरण किया गया है। तथा गायत्री कामाख्या व काली के मन्त्रों का जप करने का परामर्श दिया गया है। यदि हम हमारे कर्म व मन्त्र का विश्लेषण न कर सकें और मारण, मोहन जैसे प्रयोजन के निमित्त कर रहे हैं तो इनमें से जो उस निमित्त निदिष्ट है उसी का जप कर लिया जाए।

मन्त्र के देवता का ध्यान—शान्ति, वशीकरण, पौष्टिक कर्म के लिए किए जाने वाले प्रयोगों के लिए अभीष्ट देवता का ध्यान दिया रहता है, जो इस कर्म के लिए उपयुक्त रहता है तदपि सामान्यतया सुन्दर श्रेष्ठ आभूषणों से सज्जित, प्रसन्न वदन, वरप्रद रूप का, आकर्षण में भी देवता रूप यही होगा

किन्तु जिसका आकर्षण करना हो उसकी कल्पना इस तरह की जाए कि उक्त देवता के आगे वह जाल में फंसी मछली की तरह हो गया है। विद्वेषण में अभीष्ट व्यक्ति की इस प्रकार कल्पना की जाय जैसे वह भूना जा रहा है। उच्चाटन के प्रयोग में जिस व्यक्ति का उच्चाटन किया जाए इसकी कल्पना ऐसे की जाए जैसे उल्लू कौवों से घिर जाता है। स्तम्भन में उस व्यक्ति का ऐसा कल्पना चित्र बनाया जाए जैसे तिनका किसी शिला के नीचे दब रहा है, मारण में जिस व्यक्ति पर यह कर्म किया जाना है उसकी कल्पना उस व्यक्ति की तरह की जाए जिसे राजपुरुष वध करने के लिए पकड़ कर ले जाया करते हैं अथवा उसे शेर खा रहा है। मन्त्र जप करने से पहले मन्त्र देवता का ध्यान दिया रहता है, ऐसा ध्यान मन्त्र जप करते समय बनाए रखने से मन्त्र का प्रभाव शीघ्र होता है।

माला—कर्मों के अनुसार माला का विधान है—शान्ति कर्म के लिये किए जाने वाले प्रयोग में मोती या स्फटिक की माला, वशीकरण या पुष्टि कर कर्म में मूंगे अथवा वज्रमणि की माला, आकर्षण में हाथी दांत की माला मारण कर्म में मरे हुए वीर के दांतों की या गधे के दांत की, विद्वेषण व उच्चाटन में घोड़े के दांत की, धर्म काम की सिद्धि के लिए शंख मणि की माला प्रयुक्त होती है। कमल गट्टे एवं रुद्राक्ष की माला सर्वकर्मसिद्धिप्रद मानी जाती है।

धागा—शान्ति पुष्टि के प्रयोगों में कमल नाल के रेशे, आकर्षण उच्चाटन में घोड़े की पूंछ के बाल, मारण प्रयोग में मनुष्य की स्नायु शेष कार्यों के लिए किए जाने वाले प्रयोगों में कपास या रेशम का धागा प्रयुक्त होता है।

मुख—वशीकरण में पूर्व दिशा की तरह, अभिचार कर्म में दक्षिण (उच्चाटन, विद्वेषण, मारण, स्तम्भन अभिचार कहे जाते हैं) धन प्राप्ति के प्रयोगों में पश्चिम एवं शान्ति, पुष्टि तथा आयुष्यप्रद व रक्षा कर प्रयोगों में उत्तर की तरफ मुख करके बैठना चाहिए।

माला की मणियाँ—मुक्तिप्रद प्रयोग में सत्ताईस, अभिचार कर्म में पन्द्रह मणियों की माला बनाई जाती है एक सौ आठ मणियों की माला सभी कामों में ठीक मानी जाती है।

माला जपने के लिए आकर्षण में मध्यमा और अंगुष्ठ, त्रिद्वेपण व उच्चाटन में अंगूठा व तर्जनी, मारण में ज्येष्ठा और कनिष्ठा अंगुलियों (शेष कर्मों में अंगुष्ठ और अनामिका) से जप किया जाता है। बिना अंगूठे के कोई जप नहीं किया जा जाता है।

कर माला—उपयुक्त माला न मिलने पर हाथ से भी माला जपी जाती है। इसमें शक्ति के मन्त्रों में अनामिका (तीसरी) अंगुली के दूसरे पोर से नीचे की तरफ चलने पर दो पोर हो गए, कनिष्ठा अंगुली से नीचे से ऊपर की तरफ गिना जाता है तब तीन पोर कनिष्ठा के हुए, आने अनामिका का ऊपर का पोर फिर मध्यमा या ज्येष्ठा अंगुली के ऊपर के पोर से नीचे की तरफ उतरना पड़ेगा इस तरह नौ हो गए दसवां तर्जनी अंगुली के नीचे वाला पोर होगा इस तरह तर्जनी के दो पोर छूट जाएंगे, इन दशकों की संख्या वायें हाथ की अंगुलियों पर गिनी जाएगी।

आसन—रेशमी कपड़े का, चर्म, बेंत, ताडपत्र कंवल और कुशा के होते हैं बांस, पत्थर, काठ, धरती, तिनके और पत्तों का आसन दरिद्रता, दुःख एवं रोग देने वाले होते हैं इसलिए इनको आसन के रूप में प्रयोग न करे। मिट्टी का, गोबर या गोबर लिपा, टूटा हुआ, पलाश का, पीपल का और लोहे से छिदा हुआ आसन त्याज्य है। यदि लोग चिकना और कछवे के आकार का शेष व्यक्ति चौकोर आसन काम में लें। भोजन, भजन बिना आसन के न करने चाहिए।

आसन या वस्त्र का रंग—स्तम्भन, वशीकरण, आकर्षण में लाल रंग; शान्ति, पुष्टि व तुष्टिकर कर्मों में सफेद; उच्चाटन में धुएं जैसा; स्तम्भन में पीला; उन्मादन में गहरा लाल और मारण में काला रंग प्रशस्त है, वैसे सात्विक प्रयोगों में सफेद; राजसी प्रयोगों में पीला और तामसी प्रयोगों में काले रंग का आसन व वस्त्र काम में लिया जाता है।

स्याही—शास्त्रीय प्रयोगों में साधना करते समय यंत्र बनाकर अथवा मूलमन्त्र को ही लिखकर पूजित करके सामने रखने की व्यवस्था दी गई है, आजकल चित्र को साक्षी बनाकर पूजा करने की परंपरा चल रही है किन्तु मन्त्र विशेष एवं उनके स्वरूप देवताओं के चित्र साधारणतया नहीं मिलते इसलिए यंत्र या मन्त्र को ही हाथ से लिखकर रख लेना चाहिए। ये लिखने के

लिए कार्यों के अनुसार स्याहियां इस तरह है—वशीकरण में कुंकुम, कपूर, गोरौचन; स्तंभन में हल्दी; आकर्षण में आलता या मेंहदी; विद्वेषण में साधक का अपना रक्त; उच्चाटन में ऊंट का रक्त का प्रयोग किया जाता है। जिन प्रयोगों में विशेष प्रकार के उपकरणों, स्याही आदि के बारे में उल्लेख किया गया हो वहां वे ही ग्राह्य हैं पर जहां ऐसा नहीं किया गया है वहां यही व्यवस्था मान्य रहेगी।

पत्र—यंत्र या मन्त्र लिखने के लिए कागज-वशीकरण, आकर्षण में भोजपत्र; उच्चाटन में बगूले में उड़ा कपड़ा; विद्वेषण में गधे की खाल; स्तंभन में हाथी का चमड़ा; सम्मोहन में शिला प्रस्तर; मारण व ज्वर ग्रस्त करने में शव का कपड़ा प्रयुक्त होता है।

लेखनी का निर्देश यथा स्थान किया गया है, जहां नहीं किया गया वहां अनार या चमेली की लेनी चाहिए।

पूजन में काम आने वाले पदार्थों के लिए शास्त्रीय व्यवस्था इस प्रकार है—

(इन देवताओं के पूजन में वर्णित पदार्थ प्रयोग में न लाए जाएं)

विष्णु के चावल, गणपति के तुलसी, देवी के दूर्वा, सूर्य के बिल्वपत्र, विष्णु के आक-धतूरा, देवी के धतूर और मन्दार तथा सूर्य के तगर अपित न करे।

सूखे पत्ते, (तुलसी को छोड़) फूल और फलों से विष्णु का पूजन न करे। शिवजी के कमल और चंपा के फूल नहीं चढ़ाए जाते। सूर्य को लाल फूल अत्यन्त प्रिय हैं। किन्तु मालती और लाल कनेर के फूल नहीं चढ़ाए जाते। शिव की पूजा पुष्प की कलिका से भी की जाती है।

जहां फल-फूल-पत्ते चढ़ाने की बात आती है वहां फूलों के सम्बन्ध में ऊपर लिख दिया गया है, पत्ते में नागरबेल के पान, दूर्वा, कुशा (डाभ), अगस्य और धात्री वृक्ष के पत्ते माने गए हैं। तुलसी का पत्ता भी पत्ता ही है पर वह विष्णु और शालिग्राम को ही अपित किया जाता है। फल में आमला, बेर, इमली, अनार, मीठा नींबू, नारंगी, केला, आम जामुन माना जाता है।

पाद्य का अर्थ होता है पैरों का अर्थात् आए हुए देवता को पैर धोने के लिए दिया जाने वाला जल, पाद्य कहलाता है इस जल में श्यामाक, दूर्वा, कमल, विष्णुक्रान्ता मिली रहती है।

अर्घ्य में गन्ध, पुष्प, अक्षत, जी, कुशा, तिल, सरसों और दूर्वा पानी में मिलाया करते हैं।

आचमनीय के लिए जल में जायफल, लोंग और कंकोल मिलाया जाता है।

गन्ध में चन्दन, कपूर और अगर घिसकर लगाया जाता है।

अष्टगंध भी गंध में ही माना जाता है इसका प्रयोग यंत्र लेखन एवं देवता के पूजन में किया जाता है—शक्ति के प्रयोगों में अष्टगंध-चन्दन, अगर, कुंकुम, गौरीचन, जटामांसी, कपूर, कस्तूरी, कपि माने जाते हैं। शिव के पूजन में चन्दन, अगर, कुंकुम, कपूर, तमाल, कूठ, कुशीत और कस्तूरी तथा विष्णु के पूजन में चन्दन, अगर, कपूर, ह्रीवैर, कूठ, जटामांसी, खश, मुर का प्रयोग किया जाता है। यंत्र लेखन के लिए सर्व-सुलभ अष्टगन्ध में—दोनों चन्दन, अगर, केशर, कस्तूरी, कुंकुम, गौरीचन, कपूर ग्राह्य होते हैं।

धूप में अगर, खश, गुगल, शक्कर, शहद, चन्दन, घी में मिलाकर जलाए जाते हैं।

मधुपर्क में घी, दूध, दही आते हैं। कपास, हड्डी या बाल इस धूप में न रहें।

पंचामृत में घी, दूध, दही, चीनी और शहद माने जाते हैं।

उद्वर्तन—उबटन में हल्दी, सहदेई, शिरीष, लक्ष्मणा माने जाते हैं।

फूल—रात्रि में उपासना करनी हो तो संध्या समय अथवा रात में खिलने वाले फूल और दिन में करनी हो तो दिन में खिलने वाले फूलों को ग्रहण करना चाहिए। पूरी तरह खिले हुए फूल अथवा पूर्णतया अविकसित डोडियां न लेनी चाहिए। तेज गंध वाले, गंधहीन, कीड़े और बालों से दूषित, अपवित्र बर्तन में रखे हुए, गंदे हाथों से छूए हुए, नास्तिक या गंदे व्यक्तियों द्वारा छुए गए, दूसरे के निमित्त लाए गए या दूसरे के लिए उपयोग किए गए, मांगे हुए, धरती पर गिरे, स्नान किए हुए व्यक्ति के द्वारा लाए गए फूल त्याज्य हैं। फूल कभी भी नीचे की तरफ मुख किए हुए अर्पित न करे, पुष्पांजलि में फूल अधोमुख भी हों तो कोई आपत्ति नहीं है। पुष्प न मिले तो पत्तों से ही पूजा कर लेनी चाहिए। विष्णु को तुलसी और शिव को बिल्वपत्र

अतिप्रिय हैं। लता और वृक्ष के फल उत्तम रहते हैं। पत्ते मध्यम और फल (पुष्पों के अभाव में प्रयोग करने पर) अधम माने जाते हैं।

कोई भी वस्तु सुलभ न हो तो धुले हुए चावल और ये भी न हों तो भावना से ही पूजन करना चाहिए।

दीपक—हमारे कर्म साक्षी के रूप में स्थापित किया जाता है, यह फूल बत्ती या सीधी बत्ती का हो। वह अगर तेल का है तो साधक के दाहिने (सम्मुख स्थित देवता के बांये) हाथ और घी का है तो साधक के बांये (देवता के दांये) हाथ रखा जाएगा। जितनी देर उपासना में लगनी है उतनी देर वह जलता रह सके, इतनी व्यवस्था बाती व घी की कर ली जाए।

पुरश्चरण में हवन भी आवश्यक रूप से किया जाता है। हवन कुण्ड या वेदिका पर किया जाता है। यद्यपि हवन का विधान बहुत विस्तृत है किन्तु साधक एक दिन में अधिक से अधिक सौ माला जप सकता है और सौ माला का दशांश दश माला हुई, एक हजार आहुति के लिए एक हाथ की लम्बाई-चोड़ाई की वेदिका या कुण्ड बना लेना चाहिए। श्रुचा (घी की आहुति देने के लिए लकड़ी की चम्मच) श्रीपर्णी, शिशपा अथवा किसी दूध वाले वृक्ष की बना लेनी चाहिए। कुण्ड बनाने पर उसका सिर पूर्व में, हाथ उत्तर-दक्षिण में और योनि पश्चिम में रहती है तथा मध्य में उदर होता है। चौकोर कुण्ड सर्वसिद्धिप्रद, अर्धचन्द्र के समान योनि के आकार वाला पुत्रप्रद, त्रिकोणाकृति शत्रुहन्ता, गोल शान्ति पुष्टिकर, छेदन-मारण में षट्कोण की आकृति वाला, अष्टकोण वाला वृष्टिकर एवं ग्रह रोगादि के अरिष्ट को शांत करने के निमित्त बनाया जाता है।

हवन में समिधा, पीपल, शमी (खेजड़ा या जांट) खैर, अपामागं, पलाश, गूलर ग्राह्य होता है। किसी विशेष वृक्ष का उल्लेख न हो तो इनमें से जो सुलभ हो उसी का उपयोग कर लिया जाए। जो हवनीय द्रव्य हाथ से आहुति दिए जाएंगे उनको बीच की दो अंगुलियों—मध्यमा एवं अनामिका पर रखकर अंगूठे से अग्नि में खिसका देना आहुति देने का तरीका है। श्रुचा से—तरल पदार्थ की—आहुति देनी हो तो श्रुचा को कलम की तरह पकड़ना चाहिए, आहुति फेंक कर नहीं देनी चाहिए। जो लोग काठ का श्रुचा प्राप्त नहीं कर सकते वे तांबे या चांदी की चम्मच प्रयोग में ले सकते हैं, स्टील की नहीं। पाद्य आदि से पूजा करने पर पाद्य यंत्र या देवमूर्ति के पैरों में, अर्घ्य

शिर पर, आचमनीय मुख में, पुष्प शिर पर, दीपक कमर से ऊपर तक उठाकर दिखाना चाहिए।

हवनद्रव्यों का प्रयोजन के अनुसार वर्गीकरण इस प्रकार है—

राज्य प्राप्ति के लिए—बिल्व या जायफल (फूल); पत्नी प्राप्ति के लिए लाजा; लक्ष्मी प्राप्ति के लिए—कमल या दही; अन्न प्राप्ति के निमित्त घी में डुबोकर अन्न; वस्त्र प्राप्ति के लिए पांच रंग के फूल; समृद्धि व सम्पन्नता के लिए—घी, दूध या शहद युक्त कमल; निधि प्राप्ति के लिए—घी, बिल्व, तिल; आकर्षण कर्म में नमक; उच्चाटन के लिए—कोवे के पंख, तिल, जी या रोही के बीज; मोहन के लिए धतूरे के बीज; उच्चाटन के लिए—कपास, नीम, नये केश; मारण के लिए बकरी का घी, दूध, मनुष्य की हड्डी तथा जिसका मारण करना हो उस व्यक्ति के नाखून एवं बालों को एकत्रित करके; सभी अभिचार कर्मों के लिए कड़वा तेल, तुष, सरसों, बिनोला कण्टक, काली मिर्च, आकड़े का दूध, कटुकी, चिरायता, थूहर का दूध; आयुष्य रक्षा के लिए—घी, तिल, दूध, आम के पत्ते; ज्वर नाश के लिए—खीर सहित आम के पत्ते; रोग नाश के लिए—सफेद सरसों; वर्षा के लिए—बेंत; पुत्र प्राप्ति के लिए—पोता जीवा; वाणी के विकास के लिए—घी-गूगल; सरस्वती की कृपा प्राप्ति के लिए—जूही, जाति, पुन्नाग के फूल; वृष्टि दूर करने के लिए—दूध एवं नमक; वशीकरण के लिए—लाल पुष्प, अपामार्ग, अंकोल की समिधा शहद के साथ; उच्चाटन में—आंधी में उड़े सूखे पत्ते, बिजली से जले वृक्ष की लकड़ी, ऊंट की हड्डी, कूठ; शांति कर्मों में—दूध, गाय का घी, दूध, दही, तिल, चावल, अन्न, घी और तिल सर्वार्थ साधक माने जाते हैं। जहां अन्य द्रव्यों को मिलाकर हवन किया जाता है वहां घी और शक्कर के लिए यथेच्छ मात्रा कही गई है।

हवन की पद्धति का आविष्कार संसार में (वायोकेमिक) जैव रसायन पद्धति का पहला आविष्कार है और इस पद्धति के आविष्कार करने का श्रेय भारत को दिया जाता है। यथार्थ में हवन में जलाए जाने वाले पदार्थों के सूक्ष्मकण व्यक्ति के शरीर में जाकर क्या प्रभाव डालते हैं इसका परिणाम भारतीय भली प्रकार से जानते थे इसलिए रोगमुक्ति, ग्रहबाधा-निवारण और ज्वरादि रोगों की शान्ति के लिए विविध द्रव्यों का हवन करने की विधि प्रयोग में लाई जाती थी। चेचक निकलने पर नीम की

बन्दनवार बांधने जैसी परम्परा प्राकृतिक (एण्टी-सैप्टिक) रोगाणुनाशक विधि है। कई साधारण व्याधियों के लिए बालकों के धूणी देने की विधि से भारत की अशिक्षित स्त्रियां भी परिचित हैं तथा बफारा देने का रिवाज भी प्राचीन (बूढ़ी) महिलाओं में खूब है। विष्णु को तुलसी प्रिय कहने के पीछे क्या यह व्यावहारिक विज्ञान नहीं है कि पानी में पनपने वाले मच्छर मलेरिया का कारण बनते हैं तथा तुलसी मलेरिया की अच्छी औषधि है। आमला नवमी का व्रत करने वाली स्त्रियां तथा आमले की पूजा करने वाली स्त्रियां भले ही आमले खाने का महत्त्व न समझें पर आमले की गुणवत्ता से भारत परिचित रहा है।

गुरु—मन्त्र साधन के लिए गुरु एक अनिवार्य तत्त्व है। भारतीय परम्परा में गुरु को सर्वोच्च स्थान व महत्त्व दिया गया है, ब्रह्मा, विष्णु और महेश से भी पावन एवं दायित्वपूर्ण पद गुरु का है। गुरु की सन्तुष्टि सकल कामनाओं की सिद्धि करती है तो उसका कोप या दुराशीप् सत्यानाश कर देती है। कहा है—

शिवे रूढे गुरुः त्राता गुरौ रूढे न कश्चन

गुरु को प्रसन्न करना जितना दुष्कर है उससे अधिक दुष्कर है इन सम्बन्धों को अक्षुण्ण बनाए रखना। वास्तव में हम हमारे लोभ-मोह से ग्रस्त होकर गुरु कह लेते हैं किन्तु इस भावनापूर्ण सम्बन्ध का अर्थ नहीं समझते और कृतघ्नता अथवा उपेक्षा जैसे आचरण के दोषी बन जाते हैं। यह सम्बन्ध स्वार्थ व लोक व्यवहार से ऊपर है, इसमें व्यावसायिक गणित लगाने वाला हारता है। यदि हम पिता से अधिक पवित्र, दृढ़ और उत्सर्गमय सम्बन्धों को निभा सकते हैं तो हमें गुरु की तलाश करनी चाहिए अन्यथा सोचना भी नहीं चाहिए; जो लोग निश्चल बालक की तरह हैं और राजा हरिश्चन्द्र की तरह अपना सर्वस्व गुरु चरणों में अर्पित कर सकते हैं उनको ही किसी के साथ ऐसे सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए। अपनी कामना, अपने आग्रह, अपने सिद्धांत और अपना अहं रखकर किसी को गुरु बनाया जाएगा तो कालांतर में वह गुरु के दोष ढूंढने लगेगा, आलोचना करने लगेगा, गुरुद्रोही बनेगा। प्रत्यक्षत गुरु उसको शाप न दे किन्तु व्यवस्था का हनन करने का अपराध तो वह कर ही डालेगा और उसके जो कुफल हैं, उनको देर-अबेर

उसी को भोगना होगा। यह यथार्थ है कि यह व्यवस्था केवल शिष्य के लिए ही नहीं है, गुरु के लिए भी संहिता और मर्यादाएँ हैं किन्तु हम पहले अपने-आपको देख लें। मेरा अपना विश्वास है कि शिष्य की पात्रता गुरु को बाध्य कर देती है और शिष्य अनेक बार उन गूढ़ रहस्यों को गुरु से प्राप्त कर लेता है जो गुरु ने अपने पुत्र को भी नहीं बनलाए।

हमारे व्यावहारिक जीवन में भी हम देखते हैं कि आज तक या जीवन पर्यन्त हम जो कुछ सीखते हैं वह सब गुरु के ही माध्यम से। माँ, पिता, मामा आदि हमारे प्राकृत गुरु होते हैं। प्रायोगिक विषय तो गुरु के बिना चलते ही नहीं, इसलिए शिष्यत्व का विकास हमारी पात्रता है तथा सत्पात्र को गुरु आज या कल मिल ही जाता है। हमारी परम्परा में गुरुहीन व्यक्ति अपूर्ण निगुरा माना जाता है। खेद का विषय यह है कि जिस वर्ग में नैसर्गिक रूप से गुरुता होनी चाहिए थी वह भी सामाजिक आग्रहों से इतना पराजित हो गया कि अपने स्वरूप और स्वभाव को भूलकर लोभी हो गया। खाने के लिए अन्न, पहनने को वस्त्र और रहने को मकान—ये सब सरल, सामान्य स्तर के मिल जाएँ, इससे अधिक क्या होना चाहिए? जितना अर्थ का विस्तार होगा उतना ही अनर्थ और अशान्ति का विस्तार होगा। मैं अच्छी तरह देख, जान चुका हूँ कि जिनके पास अपरिमित शक्ति और सम्पन्नता है, वे घोर-अशान्त और तनावपूर्ण जीवन जीते हैं, शान्ति और निश्चिन्तता के दो दिन भी उनके भाग्य में नहीं हैं। समाज की दृष्टि में सर्वसुख सम्पन्न वे लोग वास्तव में कितने दुःखी और भाग्यहीन हैं—यह वही जानता है जिसने एक बार भी अपने भीतर छुपे आत्मानन्द को प्राप्त किया है। सम्पत्ति का जहां तक प्रश्न है—ब्राह्मण के लिए तपस्या, शूद्र के लिए सेवा, क्षत्रिय के लिए सम्पत्ति (कोष) और वैश्य के लिए वाणिज्य ही सबसे बड़ी पूंजी है। जो ब्राह्मण पैसे की चमक में चुंधिया गया वह अपने स्वाभाविक स्तर से पतित हो गया। वैभव-विहीन लोगों के पास चिन्तन होता है, बशिष्ठ और विश्वामित्र जैसे व्यक्ति ही युग-युगों का मार्गदर्शन करने वाले राम जैसे प्रतीक पुरुष को अवतार बना सकते हैं। मेरा आशय यह नहीं है कि ब्राह्मण अपने जीवन में सुविधा से वंचित रहे या वनवासी हो जाए पर सुविधाओं व प्रदर्शनकारी साधनों को जुटाने के लिए अपने ब्राह्मणत्व की हत्या न करे, जिस दिन मनस्वी व्यक्ति को महलों में रख दिया जाएगा, उसके जुलूस

निकाले जाएंगे उस दिन उसका ब्राह्म तैजस क्षीण हो जाएगा। ऐसा व्यक्ति भूखा न मरे यह समाज का दायित्व है और ऐसे आयोजनों से दूर रहे—यह उस आत्मनिष्ठ साधक-ब्राह्मण का धर्म है। अस्तु—

शास्त्रों ने गुरु के सम्बन्ध में क्या कहा है—यह भी देख लें—

गुरु माता और पिता से शुद्ध, जितेन्द्रिय, आगमशास्त्रों के रहस्य का ज्ञाता, परोपकारी, शास्त्रों का मर्म जानने वाला, जप और पूजा करने वाला, सत्यवादी, शान्त, वेदों का अर्थ जानने वाला, देवता हृदयंगम (जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होगा उसी के हृदय में देवत्व प्रकट होगा अन्यथा देवता उससे पराङ्मुख रहेंगे) अत्यन्त वृद्ध न हो, अत्यन्त बालक न हो, गंजा और दुबला न हो, पैर से लंगड़ा, दंतुल, अधिक या कम अंग वाला न हो, गृहस्थ गुरु में कृतज्ञता, वचनचातुरी, विद्याध्ययन का अभ्यास, साहस भूमिशल्य का निराकरण करने की क्षमता, गृहनिर्माण शास्त्र (वास्तु) का ज्ञान, कर्मकाण्ड में निपुणता, मुद्रा और तन्त्र की मर्मज्ञता, पवित्रता, स्वच्छ वस्त्र पहनने का स्वभाव हो तथा जो युवा हो, बुद्धिमान, कृपालु, श्रद्धाशील सम्पन्न हो और ईष्यालु न हो।

आचार्य, मामा, स्वसुर, चाचा, राजा, नित्य हवन करने वाला—ये सब हमारे व्यवस्थाकृत गुरु हैं। पिता, माता, बड़ा भाई ये हमारे प्राकृत गुरु हैं।

गुरु के लिए अवान्तर लक्षण यह भी बताया है—जिस प्रकार किसी देवता की प्रतिमा देखने से हमें सन्तुष्टि होती है तथा जिसकी संगति से हमें आन्तरिक आश्वस्ति मिलती है वह भी गुरु होता है, उससे लिया मन्त्र सिद्धिप्रद रहता है। जिस व्यक्ति को गुरु रूप में मान लेने पर, जिसके मिलने से हमारे में प्रसन्नता होती है उससे लिए हुए मन्त्र या विद्या से हमारा अभ्युदय होता है।

शिष्य अच्छे कुल परम्परा में उत्पन्न, पवित्रात्मा, पुरुषार्थी, वेदों का ज्ञाता, चतुर, काम-वासनाओं का परित्याग किया हुआ, आस्तिक, नास्तिकों की संगति से दूर रहने वाला, जीवों का हित चाहने वाला, पिता और माता का भक्त, अपने धर्म में रत रहने वाला, मन, वचन, काया और धन से गुरु की सेवा करने के लिए तत्पर, जाति, विद्या और धन के अहंकार से रहित,

गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए अपने आपको उत्सर्ग कर देने वाला, अपने को दास की तरह और अबोध शिशु की तरह (गुरु के समक्ष) समझने वाला, अपने काम को छोड़कर गुरु के काम करने के लिए तैयार, मन्त्र का जप और पूजन करने वाला, रहस्यों की रक्षा (दूसरों के सामने प्रकट न) करने वाला, त्रिकाल प्रणाम करने वाला, शिष्य होता है।

शिष्य के आचरण गुरु के समक्ष अधिक बोलना, गप हांकना, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मजाक, व्यर्थ की प्रशंसा कुटिलता, गुरु को ऋण देना या ऋण लेना, गुरु के साथ क्रय-विक्रय, गुरु की वस्तुओं का लेन-देन, गुरु की निन्दा (दूसरे करते हैं तो उनको रोकना, न रोक सके तो उस स्थान से हट जाना) गुरु के आगे अलग से पूजा, व्याख्या, दीक्षा तथा अपनी प्रभुता का प्रदर्शन न करे। गुरु के आसन, शैय्या, गहने, जूते का उपयोग न करे। गुरु की ओर मुख करके, प्रणत भाव से बैठा रहे। जिस प्रकार गुरु से व्यवहार किया जाता है उसी प्रकार गुरु पत्नी से करना चाहिए।

भक्तिक्रम इस प्रकार बतलाया है—जिस प्रकार का भाव देवता में होता है, उसी प्रकार का मन्त्र में, और मन्त्र के जैसा ही भाव गुरु में और गुरु जैसा ही भाव आत्मा में अपने प्रति रखना चाहिए।

व्यक्ति एक बार जिस व्यक्ति को गुरु मान लेता है तथा बाद में वह किसी अन्य व्यक्ति से कोई प्रयोग सीख कर कोई दुष्कर्म करता है तो उसका दोष मूल गुरु को लगता है जैसे मन्त्री का दोष राजा को, पत्नी का दोष पति को और पुत्र का दोष पिता को लगता है। गुरु के प्रति अनन्य भक्ति रखने से देवता प्रसन्न होते हैं और देवता की प्रसन्नता से मन्त्र सिद्ध होता है किन्तु इस सम्बन्ध में मेरा विनम्र निवेदन है कि गुरु की शपथ या उसके नामस्मरण का अधिक उपयोग किया जाएगा, सांसारिक कर्मों के निमित्त इन सम्बन्धों का अनर्गल उपयोग किया जाएगा तो इससे गुरु के तपस्या कोष में अनजानी हानि होगी। गुरु संचित करता जाएगा और शिष्य उसमें से चुपचाप खर्च करते जाएंगे—यह अशोभन आचरण है, इसका फल गुरु की यथार्थ हानि है इसलिए जहां गुरु स्मरण एवं उसकी साक्षी आवश्यक है तथा जिसके लिए गुरु की आज्ञा है एवं शास्त्रीय व्यवस्था है वहीं उनका उपयोग किया जाए, अनिवार्य स्थिति में ऐसा कर दिया जाए तो उसकी सूचना आवश्यक रूप से दे दी जाए।

मन्त्र साधक के आचरण इमली, शलजम, बिल्व, (बेल) कलींजी लहसुन, तेल में बने पदार्थ, पिण्याक, सिंघाड़े और बासी भोजन उन साधकों को नहीं खाने चाहिए जो सरस्वती के मन्त्र की उपासना करते हैं। इसके साथ रात में पान खाना, दिन में स्त्री सम्पर्क, संध्या समय सोना, अपवित्र स्थिति (दीर्घ शंका और लघु शंका करते समय तथा अशौच मुख) में बोलना, स्त्रियों की निन्दा करना, रजस्वला से समागम करना, नग्न स्त्री को देखना, असत्य भाषण करना, पुस्तक को लांघना, प्रतिपत् (एकम), अष्टमी, चतुर्दशी, ग्रहण, सूर्य संक्रान्ति एवं पर्व दिवसों में अध्ययन करना, अध्ययन के समय निद्रा आलस्य व जम्हूआई आदि का परित्याग कर देना चाहिए।

अध्ययन करते समय क्रोध, थूकना आदि न करे, गुप्तांगों का स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। यदि कोई पापी मनुष्य, सर्प, बिल्ली, मेंढक या नेवला पाठ करते समय आ जाए और रात्रि में दीपक बुझ जाए तो पाठ बन्द कर देना चाहिए। इन विधनों के दूर चले जाने पर फिर प्रारम्भ किया जा सकता है। लक्ष्मी मन्त्र की उपासना करने वाले व्यक्ति को सदा प्रसन्न मुख रहना चाहिए। भोजन करते समय पश्चिम की तरफ मुख करना चाहिए। इत्र-फुलेल-फूलों की माला और स्वच्छ-दिव्य वस्त्र धारण करने चाहिए। स्वच्छ शैय्या पर युवती स्त्री के साथ सोना चाहिए, (किसी पराई स्त्री के साथ नहीं), तेज को मालिश करके भोजन करना, तंगा होकर पानी में उतरना, मुंह पर हल्दी को लोपना, अपवित्र अवस्था में बोलना, धरती पर लिखना, केवल नमक व तेल खाना वर्जित है। बिल्व पत्र, कमल पुष्प, द्रोण को शिर पर धारण करना अच्छा है, गन्दे कपड़े पहनना, गन्दा रहना, खराब अन्न खाना मना है। द्रोण, कमल और बिल्व को लांघना वर्जित है। सहदेई, इन्द्र-वल्ली, श्री वल्ली, अंबुज और मूंगे को शिर पर धारण करना चाहिए। कमल को सूँघना या लांघना और कमल बीजों को खाना निषिद्ध है। सत्यभाषी और विष्णु की भक्ति करने वाला रहे, गन्दा न रहे, तिनके न तोड़े, धरती पर न लिखे तथा धरती पर न सोए, पंचमी तिथि को नमक और सप्तमी तिथि को आमला न खाए, पंचमी तिथि और उत्तरा नक्षत्र में स्त्री का संग न करे, पश्चिम दिशा की तरफ मुख करके भोजन करे, बिल्व की लकड़ी से दान्तुन न करे, प्रातःकाल तिलों का सेवन करे, शुक्ल पक्ष में बिल्व बीज और खीर न खाए, चोलाई का शाक, गूलर का फल, श्राद्ध का अन्न और

नया अन्न न खाए, कमल और आक के पत्ते में भोजन न करे, तुष और बिनीले को न छुए, बिल, गोबर और ब्राह्मण की छाया न लावे।

साधक को हविष्यान्न खाने का निर्देश है। हविष्यान्न में साठी चावल, मौसमी साग-सब्जियाँ, जड़ें, जमीकन्द के अलावा कन्द, सैधा और समुद्री नमक, गाय के घी, दूध, आम, हल्डे, इमली, जीरा, नारंगी, केला, गुड़ की नहीं—गन्ने के रस से बनी वस्तुएं तथा तेल में न पकी वस्तुएं मानी जाती हैं।

जप करने का योग्य स्थान नास्तिक, दुष्ट, हरिण आदि से रहित तथा आशंका और भय से विमुक्त वन में अथवा भक्ति भावना से युक्त, निन्दा रहित, सम्पन्न, धार्मिक, भौतिक व दैविक उद्भवों से रहित जहां भक्तों का समागम होता है वहां, अत्यन्त रमणोक प्राकृतिक स्थान में जप करना चाहिए। दूसरे के अधीन स्थान में, जहां राजा, मंत्री एवं राज्याधिकारियों का आवागमन होता हो, पुराना देव मन्दिर, सार्वजनिक बाग, जीर्ण घर, पेड़ के नीचे, नदी के किनारे, पहाड़ी कुंज और धरती में बने छिद्रों में न रहे।

तान्त्रिक पीठ इनसे भिन्न विपरीत भी हुआ करते हैं। काली, तारा, मातंगी आदि उग्र रूपों की साधना करने वाले साधक शव, श्मशान और श्यामा पीठ पर उपासना करते हैं। अरण्यपीठ भी तान्त्रिक साधकों के लिए मनोरम स्थान हुआ करता है। वस्तुतः इन मंत्रों के साधक को भय व घृणा जैसे भावों पर विजय प्राप्त करनी होती है। तंत्र ने अरण्य वा निर्जन प्रदेश के जो लक्षण बताए हैं उनके अनुसार भयावह स्थान ही अरण्यपीठ होता है। भयावह होने के पीछे हिंस्र जन्तुओं का होना कारण नहीं होता पर जिन स्थानों पर जाते हुए एक सामान्य व्यवित को भय लगे। कई मंत्रों की साधना के लिए वे एकांत स्थान चुने जाते हैं जो जन संचार से रहित होते हैं, इनमें वे पुराने मकान भी आते हैं, जिनकी गन्दगी व शून्यता को देखकर हम भूतावास कह देते हैं। श्मशान पीठ हम जानते ही हैं, शव पीठ में मुर्दे को आसन बनाकर उस पर बैठकर साधना करते हैं, श्यामा पीठ में सुन्दर युवती साधना का आधार बनती है। वात्स्यायन ने रमणीय स्त्रियों के अन्य आयामों के आधार पर वर्गीकरण किए हैं, तंत्रशास्त्र ने अपनी दृष्टि से। कामशास्त्र

ने पद्मिनी स्त्री के रूपाकार के जो आयाम बताए हैं वे तंत्र में भी मान्य हैं। उग्र मंत्रों की साधना करते समय भय को विजय करने से व्यक्ति की पात्रता-शक्ति के आवेश हो सकने की योग्यता विकसित होती है तो श्यामा साधना में परम रूप लावण्यवती स्त्री को माध्यम बनाने के काम के पाशविक एवं प्रबल आवेश पर नियंत्रण पाकर पात्रता अर्जित करनी होती है। वास्तव में ये वीराचार के स्तर के साधन हैं। सामान्य स्तर पर इनका उपयोग नहीं किया जाता।

उत्तम पूजा तथा अनुष्ठान करने का स्थान वह शिव मन्दिर जिसमें वृषभ या नन्दिकेश्वर की मूर्ति नहीं है तथा जिसका मुख पश्चिम दिशा में है अथवा जिस प्रदेश में पीपल या बिल्व के वृक्षों का कुंज हो अथवा जहां विविध पुष्पित वृक्षों का झुरमुट हो। घर पर पूजा करने पर मंत्र जप का सामान्य फल होता है, गायों के बांधने बाड़े में सौ गुना, बगीचे अथवा जंगल में हजार गुना, पर्वत पर दस हजार गुना, नदी में—विशेषकर समुद्र में जाकर मिलने वाली नदी में लाख गुना, देवालय में करोड़ गुना फल होता है। आज के युग में देव मन्दिरों में भीड़ और एकांत देव मन्दिरों में सुलभ न होने के कारण घर पर ही मंत्र जप करना सम्भव और सुविधाजनक रहता है। सुविधा हो तो किसी घर में अनेक देवताओं की मूर्तियां, चित्र या यंत्रादि स्थापित करके उसे ही देवालय का रूप दे दिया जाना चाहिए। उसमें पवित्रता और शान्तिमय वातावरण बनाए रखना चाहिए। गृहस्थों के यहां बनाए जाने वाले मन्दिर में कोई भी एक—अकेले देवता की मूर्ति या चित्र स्थापित नहीं करना चाहिए। इस विविधता में भी यह ध्यान रखना चाहिए कि परस्पर विरुद्ध गुण धर्मा देवताओं को एकत्र नहीं करना चाहिए जैसे विष्णु और कालिका, शालिग्राम और भैरव, हनुमान और गणपति अथवा भैरव। मूर्ति अगर स्थापित की जाती है तो वह नौ अंगुल से अधिक बड़ी गृहस्थ के घर में स्थापित नहीं की जानी चाहिए। चित्रों वा मूर्तियों में समग्र परिवार न भी हो तो भी युगल तो स्थापित किया ही जाना चाहिए। विशेषतया देवी के स्वरूपों में, महा विद्याओं में इसका ध्यान रखना आवश्यक है। शक्ति के सहचर शिव स्वरूपों का विवरण इस प्रकार है—इनको देवी स्वरूप के दाहिनी ओर स्थापित किया जाए जिससे ये शक्तियां वाम भाग में आ जाएं। इनमें धूमावती विधवा है इसका दाहिना भाग रिक्त रहता है, दक्षिण कालिका के महाकाल,

तारा के अक्षोम्य, त्रिपुर सुन्दरी के पंचमुखी त्रिनेत्र शिव, भुवन सुन्दरी के त्रिनेत्र-त्र्यंबक, छिन्न मस्ता के कबंध, बगलामुखी के एकमुख महारुद्र, मातंगी के मतंग, कमला के विष्णुरूप सदाशिव, अन्नपूर्णा के दशमुख ब्रह्मा, दुर्गा के नारद दक्षिण भाग में विराजमान रहते हैं। जिन मंत्रों में किसी देव स्वरूप का निर्देश नहीं किया गया है वहां ऋषि ही अनेक भर्ता होते हैं तथा उन शक्ति रूपों के दाहिने भाग में उन ऋषियों की स्थापना कर लेनी चाहिए।

अनुष्ठानों में क्षेत्रपाल, दिक्पाल, दिक्पतियों के आयुध, वाहन आदि का उल्लेख आता है अतः यहां जानकारी के लिए इनका विवरण दिया जा रहा है।

क्षेत्रपाल अमृत, वृषभ, शेलराज, वासुकि, अर्धकृत, शक्तिपूः, पद्म-योनि, महाशंख।

दिक्पाल क्रमशः पूर्व से दक्षिण होते हुए—इन्द्र, अग्नि, यम, रक्षः वरुण, वायु, चन्द्र, निर्ऋति, अनंत, ब्रह्मा। दश दिशाओं में चार दिशाएं, चार विदिशाएं, ऊपर और नीचे इस प्रकार दस होती हैं।

आयुध वज्र, शक्ति, दंड, खंग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म, चक्र क्रमशः पूर्वादि दिशाओं के स्वामी माने जाते हैं।

पूजोपचार (कम से कम) पंचोपचार धूप, दीप, गंध, पुष्प, नैवेद्य।

घोडशोपचार आसन, स्वागत, अर्घ्य, पादत, आचमनीय, मधुपर्क, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार।

अष्टादशोपचार आसन, आवाहन, अर्घ्य, पादय, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, आभूषण, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मान्य, अनुलेप, नमस्कार, विसर्जन।

षट्त्रिंशदुपचार (छत्तीस उपचार) आसन, आवाहन (उपस्थान) सन्निधि, अभिमुख, स्थिरोकरण, प्रसाधन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, नीराजन, वस्त्र, आचमनीय, उपवीत, आचमनीय, भूषण, दर्पण, गंध, पुष्प, धूप, नैवेद्य, पानीय, आचम, हस्तवास, तांबूल, अनुलेप, पुष्पहार, गीत, वादय, नृत्य, स्तुति, प्रदक्षिणा, पुष्पांजलि, नमस्कार।

साधना किए बिना कोई भी मंत्र कार्यक्षम नहीं होता। इस साधना से मंत्र एक यंत्र (मशीन) की तरह काम करने लायक हो जाता है, जिसे किसी

भी समय किसी भी स्थान पर काम में लिया जा सकता है। इस साधनों को पुश्चरण कहा जाता है पुश्चरण एक नियतकालिक अनुष्ठान है जिसमें सभी नियमों का कठोरता पूर्वक पालन करते हुए साधना की जाती है। पुश्चरण करने के लिए विभिन्न मंत्रों की भिन्न-भिन्न संख्या निर्धारित की गई है। सात्रर मंत्र इस कलियुग के लिए रचे गए हैं इसलिए इनकी संख्या अपेक्षा कम रहती है, शास्त्रीय मंत्रों में भी अनेक मंत्र ऐसे हैं जिनका पुश्चरण पचास बार जपने से भी हो सकता है तो कई ऐसे हैं जिनका पुश्चरण कई लाख जप करने पर सम्पन्न होता है।

पुश्चरण पवित्र अनुष्ठान है, इसमें मंत्र ग्रहण—दीक्षा—करके विधिपूर्वक अनुष्ठान समाप्ति तक नित्य जप करना होता है। जो मंत्र बिना दीक्षा के भी फलप्रद हो सकते हैं उनमें स्वप्न में उपदिष्ट, योगिनी प्रदत्त, अनायास रूप से प्राप्त और जिस देवता या मंत्र के प्रति अबोध अवस्था से ही रुझान हो—माने जाते हैं। मंत्रोपासना में गुरु अनिवार्य रूप से मान्य होता है। ऊपर गुरु के लक्षण लिखे जा चुके हैं, इस प्रकार का गुरु भी मिल ही जाता है पर जो लोग न पा सकें वे तांत्रिक मंत्रों की साधना के लिए एकलव्य की तरह देवादि देव भगवान् सदाशिव को गुरु के रूप में मानकर अपना अनुष्ठान कर सकते हैं। एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी भी व्यक्ति को गुरु मानने से पहले चाहे जितने शंका-विकल्प कर लेने चाहिए किन्तु गुरुरूप में मान लेने के बाद उसे निभाना चाहिए। यदि हम उसके दोषों को देखने लगेंगे अथवा उसके चरित्र में संभव कमियाँ को गिनने लगेंगे और उसके अज्ञान का लेखा-जोखा करने लगेंगे तो इससे हमारी वृत्ति कलुषित होगी, गुरु को अपने किए का फल मिलेगा पर उसके दोषों पर विचार करके हम भी उनमें भागीदार बन जाएंगे इसलिए निर्णय करने के बाद उस पर सोच-विचार करना अनुचित रहता है। दूसरी बात यह भी है कि गुरु को पहचानने में हमारे ज्ञान के अनुसार हम कमी नहीं रखते किन्तु गुरु के रहस्यों को प्राप्त करने के लिए हमारे में पात्रता होनी ही चाहिए। गुरु की कृपालता तक पहुंचने के लिए, श्रद्धा, धैर्य, सेवा और निष्ठा आवश्यक है। हमारे पौराणिक उपाख्यानों में गुरु की कठोरता पर विजय पाने वाले शिष्यों के धैर्य एवं अविचल निष्ठा एवं निश्चल सेवा के कई उदाहरण हैं, इस प्रकार से शिष्य गुरु से जो चाहे सो ले

सकते हैं, वे सामान्य सांसारिक व्यक्ति को भी गुरुत्व से भूषित करके महनीय बना सकते हैं, इसलिए मेरी दृष्टि में शिष्य महान् होता है। हम जिन ऋषियों के ग्रंथ पढ़कर ज्ञान प्राप्त करते हैं वे तो आज नहीं हैं, किन्तु हमारी पात्रता के कारण ही उन शास्त्रों का रहस्य प्राप्त करते चलते हैं, उनकी प्रच्छन्न कृपा से हमारा अज्ञान, कषाय धुलता चला जाता है और ज्ञान का भास्वर प्रकाश हमारे इतस्तः फैलता चला जाता है। शास्त्र कहते हैं—

गुरुं न मर्त्यं बुध्येत, यदि बुध्येत तस्य तु
कदापि त भवेत्सिद्धिः न मन्त्रः देव पूजनं :

गुरु को कभी भी मनुष्य न समझे, यदि उसे मनुष्य समझा जाएगा तो मंत्रों से या देवपूजन से कोई भी सिद्धि कभी भी नहीं मिलेगी। जो लोग शारीरिक शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए शरीर श्रेष्ठ गुरु की आवश्यकता रहती है अन्यथा गुरु से हमारा तात्पर्य उसके बौद्धिक स्तर एवं गुणालंकृत व्यक्तित्व से होता है। आज तक विश्व में जितने प्रसिद्ध लोक शिक्षक हुए हैं उनमें अधिकांश—अष्टावक्र, चाणक्य, सुकरात जैसे लोग ब्राह्म दृष्टि से मोहक व्यक्तित्व वाले नहीं हुए। शिष्य की उच्चता और पात्रता का वर्णन करते हुए शास्त्र कहते हैं—

“यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ
तस्यैते कथिताः ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः”

अर्थात् जिस व्यक्ति की देवता में अचल निष्ठा है और जैसी निष्ठा देवता में है वैसी ही गुरु में है उसी पर यह गूढ़ रहस्य प्रकाशित होते हैं।

पुरश्चरण इसके निमित्त किए जाने वाले अनुष्ठान में चतुरंगी पंचांगी या षडंगी साधना की जाती है—**ध्यान पूजा जपः होमः** ये चार अंग हैं, पंचांग में ब्राह्मण भोजन और षडंग में तर्पण भी गिना जाता है। चतुरंगिणी सेना जिस प्रकार सम्पूर्ण विजय वाहिनी मानी जाती है, उस प्रकार पूजा के भी चार अंग सम्पूर्णता को द्योतित करते हैं। जो लोग ब्राह्मण भोजन और तर्पण नहीं कर सकते उनके लिए उनकी मात्रा के अनुसार जप कर लेने का विधान है।

यहां हम पुरश्चरण क्रिया पर विस्तार से विवेचन करते हैं। यद्यपि पुरश्चरण करने वाले के उठने से लेकर रात्रि में सोने तक के सारे आचार-

व्यवहार के सम्बन्ध में शास्त्र के स्पष्ट निर्देश हैं किन्तु आज के युग की जटिलता को देखते हुए यह सम्भव नहीं कि उनका अविकल रूप से पालन कर लिया जाए इसलिए संक्षेप में आचार संहिता में यही ध्यान रखा जाए कि कोई भी ऐसा काम न किया जाए जिससे किसी को कष्ट हो, भावनात्मक ठेस भी लगे, वाक् संयम—असत्य भाषण, आत्म प्रशंसा, अनावश्यक वातलाप कामुकता के प्रसंग का परित्याग करना है, भोजन में हविष्यान्न अच्छा धान्य या शाक फलादि, शुद्धता पूर्वक बनाया गया, बनाने वाला बनाते समय पवित्र विचार धारा रखे, चर्चा में किसी भी प्रकार की निन्दा, ईर्ष्या आदि न रहे, देवता एवं साधना किए जा रहे मंत्र का चिन्तन करते रहना श्रेयस्कर रहता है, इससे व्यक्ति का बाह्य एवं आन्तरिक वातावरण निर्मल रहता है और इस निर्मलता से सिद्धि मिलती है। जप स्थान के सम्बन्ध में विचार किया जा चुका है। प्रयोग प्रारम्भ करने से पूर्व प्रतिदिन पाप पुरुष का ध्यान करके प्राणायाम में 'यं' इस वायु बीज का जप करते हुए शोषण करे तथा 'रं' बीज का जप करके जलाए। हमारे पूर्वजन्मों के पाप व शाप हमारी साधना के फलीभूत होने में बाधक बनते हैं इसलिए पाप पुरुष का ध्यान करके उसका शोषण करना अच्छा रहता है। पाप पुरुष का ध्यान इस प्रकार है—

ब्रह्महत्याशिरस्कं च स्वर्णस्तेयं भुजद्वयं, पुरापानहृदा प्रोक्तं गुरुतल्प कटिद्वयम्
तत्संयोगि पदद्वन्द्वं अंग-प्रत्यंग पातकं, उपपातक रोमाणं रक्तशमश्रु
विलोचनम्। खड्गचर्मधरं पापं अंगुष्ठ परिणामकम् अधोमुखं कृष्णवर्णं
दक्षपार्श्वे विचिन्तयेत्।

अर्थात् हमारे अंगुष्ठ जितने परिणाम के शरीर वाला यह पाप पुरुष कालेरंग का अधोमुख, खड्ग और चर्म को धारण किए हुए लाल दाढ़ी व आंख वाला है—ब्राह्मण की हत्या के दुष्कर्म से इसका शिर, सोने की चोरी से हाथ, मदिरा पान से हृदय, गुरु पत्नी गमन से कमर, इस जैसे अन्य कर्मों से दोनों पैर और उस पापों से रोम बने हुए हैं और यह हमारे दाहिने पार्श्व भाग में रहा करता है इस पाप पुरुष को कल्पना में रख कर तीन प्राणायाम करे, पूरक प्राणायाम करते समय 'यं' वायु बीज का जप करते हुए यह भावना करे, कि इससे वह पाप पुरुष शोषित हो रहा है फिर कुंभक में 'रं' इस अग्नि बीज का जप करते हुए यह सोचे कि इससे पाप पुरुष जल रहा है। जिस दिन

से पुश्चरण करना हो उससे पहले, सात्विक देवता की मंत्र या साधना करना हो तो दस हजार (अथवा जैसी गुरु की आज्ञा हो), गायत्री (ब्रह्म गायत्री या उसी मंत्र की गायत्री) का जप करना चाहिए। राजसी-वशीकरण सम्मोहनादि के प्रयोगों में कामाख्या के मंत्र का और तामसी प्रयोगों में काली के मन्त्र का जप करना श्रेयस्कर रहता है।

एक शास्त्रीय वचन के अनुसार—

“सुतीर्थे प्रजपेन्मन्त्रं पूर्वं पाप विमुक्तये, शुद्धदेहाय मंत्रोऽसौ ततः सिद्धिं प्रयच्छति”

अर्थात् किसी भी मन्त्र का पुश्चरण करने से पूर्व किसी पवित्र स्थान पर रहकर पाप मोचन के लिए उपर्युक्त में से किसी भी मन्त्र का या उसी मन्त्र का या गुरु द्वारा निर्दिष्ट किसी मन्त्र का जप करने से साधक पाप मुक्त हो जाता है और इससे पुश्चरण में सफलता मिल जाती है। पुश्चरण में अपने पहले से किए जा रहे नित्य कर्म को करने के पश्चात् यह नैमित्तिक कर्म किया जाता है। पुश्चरण की परिभाषा करते हुए तंत्र कहता है—

“साधनं मूलमंत्रस्य पुश्चरण मुच्यते

पुश्चरणीयत्वा विनियोगादि कर्मणाम्॥

मूल मन्त्र की साधना ही पुश्चरण है विनियोगादि कर्म इसके पूर्ववर्ती होते हैं इसलिए पुश्चरण कहा जाता है। किसी भी पुश्चरण निमित्त किए जाने वाले जप में सबसे पहले तिथिवार, नक्षत्रादि का विचार करके, कार्यारंभ किया जाता है। इष्टदेव, गुरुवरण कुलदेवता, स्थान देवता को नमस्कार करके संकल्प किया जाता है। संकल्प में देश काल (तिथि, वार) का उल्लेख करते हुए अपने गोत्र व नाम का उच्चारण करते हुए मन्त्र का नाम व संख्या के साथ अहं करिष्ये यह कहकर हाथ में लिए हुए जल को धरती पर छोड़ दिया जाता है। इसके बाद विनियोग किया जाता है। विनियोग का अर्थ होता है इन्वेस्टमेंट। तंत्र विनियोग की परिभाषा देता है—

“धर्मार्थं काममोक्षेषु शास्त्र मार्गेण योजनम् सिद्धमंत्रस्य संप्रोक्त विनियोगः”

सिद्ध मन्त्र का धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में शास्त्रीय विधि के अनुसार लगाना ही विनियोग कहा जाता है। विनियोग में मन्त्र का नाम, ऋषि, छन्द, देवता, बीज और शक्ति का विवरण दिया रहता है इसलिए उनका उच्चारण

करते हुए प्रयोजन को बोलना होता है, फिर जबे **विनियोगः** कहकर जल को धरती पर छोड़ दिया जाता है। विनियोग के पश्चात् ध्यान किया जाता है, ध्यान के लिए मन्त्र या श्लोक संबन्धित प्रयोग में दिया गया रहता है, जहां ऐसा श्लोक नहीं होता वहां मूलमंत्र से ही ध्यान किया जाता है। मंत्र जिस प्रकार का होता है तदनुसार देवता का स्वरूप इसी अध्याय में पहले लिखा जा चुका है। पुरुष वरण कर्त्ता को करणीय और त्याज्य कर्मों का ज्ञान होना चाहिए।

भोजन एक बार किया जाए, भोजन में हविष्यान्न प्रयोग किया जाए यदि एक बार के आहार से तृप्ति न हो तो शाम के समय दूध या फल ले लिए जाएं।

त्याज्य पदार्थों में झील का नमक, मांस, कांसी के वर्तन में भोजन, शलजम, गाजर, उड़द, मसूर, चना और पान एवं उत्तेजक पदार्थ। दुर्जनों की संगति और लपरवाही छोड़ देनी चाहिए। मन का संयम, पवित्रता, मौन पालन करने, उताव न-उत्सुकता व व्याग्रता, हीनता, दुःख से प्रभावित न होने से मन्त्र का सामर्थ्य बढ़ता है इसे मन्त्र संपत् कहा जाता है। मन्त्र साधना में निश्चित व शीघ्र सफलता के लिए भूमि शयन, ब्रह्मचर्य, मौन, ईर्ष्याद्वेष से दूर रहना, नित्य स्नान, ओछे काम न करना, नित्य पूजन, नित्य दान, देवता की स्तुति व कीर्तन करना, नैमित्तिक पूजा, गुरु और देवता पर विश्वास, निष्ठापूर्वक जप।

वर्जित कार्य स्त्रियों, शूद्रों, पतितों और नास्तिकों के साथ संभाषण, असत्य कुटिल और जूठे मुंह बोलना, अधिक बोलना, किसी अन्य देवता का पूजन, वाणी-काया और मन से स्त्रियों के प्रति निःस्पृह भाव रखना, गीत, वाद्य, नृत्य (देवता की पूजा में किग्रा जाने वाला नहीं) उबटन, पान, मालिश (सुगन्धित द्रव्यों का लेप या सुगन्धित तेल की मालिश) फूल या फूल माला धारण करना, अनिवेदित भोजन (देवता को अर्पित न किया गया भोजन) गर्भ पानी से स्नान, इत्र आदि का प्रयोग न किया जाए। स्नान पंचगव्य से या आमले से किया जाना चाहिए।

जप करते समय गन्दे हाथ से, नग्न, शिर ढके हुए, व्यर्थ की बात करते हुए जप करने से वह जप निष्फल जाता है। जप के बीच में एक शब्द बोलने

पर प्रणव मन्त्र बोलकर, असंस्कृत शब्द बोलने पर प्राणायाम करके, अधिक बोलने, छींक आने, अस्पृश्य अंग को छूने पर मन्त्र का न्यास करके फिर जप करना चाहिए। मन्त्र जप करते समय शिर पर पगड़ी या अन्य आवरण न रहे, नग्न, बिना संवारे बाल, स्त्रियों से विरा, खुले हाथ वाला (माला को गौमुखी में रखकर) चिन्ताकुल चित्त, भूखा, क्रोधाविष्ट, बिना आसन, सोया हुआ, चलता हुआ, खड़ा होकर, गली में स्थित, जूते पहने हुए, अपवित्र स्थान में, पलंग (विस्तर) पर बैठा हुआ, किसी पशु की सवारी करते हुए (अन्य सवारियों में भी जप करना इसलिए वर्जित है कि उनकी भीड़-भाड़ में किसी का स्पर्श, बीड़ी-सिगरेट का धुआँ जैसे संसर्ग से मान की एकाग्रता भंग होती है मानसिक जप में ये व्यवस्थाएँ शिथिल रहती हैं। पैर फैलाकर, उत्कृष्ट आसन लगाये हुए, जप नहीं करना चाहिए। पतित आचरण करने वाले लोगों, शूद्रों, को देखने व उनसे बात करने पर, जम्हुआई आने पर अप्रान्त वायु निकलने पर जप को छोड़कर आचमन, प्राणायाम और न्यास करके जप प्रारम्भ करना चाहिए। जप करते समय मुर्गी, बिल्ली, कुत्ता, गधा, वानर को देखकर अथवा अपना रूप दर्पण में देखने पर आचमन करके (संभव हो तो स्नान करके) न्यास करके जप प्रारंभ करना चाहिए।

स्मरण रहे भैरव की उपासना में कुत्ते को, हनुमान की उपासना में वानर का, ताम्रचूड़ की उपासना में मुर्गे का, शीतला की उपासना में गधे को देखना अशुभ नहीं माना जाता इसलिए जप छोड़ा नहीं जाता। जप छोड़ने का अर्थ है माला में जितने मन्त्र जपे जा चुके उनको छोड़ दिया जाए तथा फिर से उस माला को प्रारंभ किया जाए। मन्त्र जप में मन्त्र का उच्चारण बहुत धीमे या तेज नहीं करना चाहिये पुश्चरण में जितनी मात्रा प्रतिदिन के लिए नियत की गई है उतनी की जानी चाहिये। मात्रा को घटाना-बढ़ाना ठीक नहीं न्यूनाधिक करने से जप भ्रष्ट हो जाता है। निरन्तरता का पालन किया जाए, दिन का उल्लंघन न किया जाए। शिव, सूर्य, अग्नि, गुरु अथवा दीपक (या मन्त्र देवता के यन्त्र चित्र) की साक्षी में जप करना चाहिये। कुश की शैथ्या या अन्य पवित्र आस्तरण पर शयन करे, पवित्र वस्त्र धारण करे, पहने वस्त्रों को नित्य धोवे—एक ही वस्त्र पहन कर अथवा बहुत सारे वस्त्र पहन कर जप न करे। रोग या अन्य कारण से किसी दिन जप न कर सके तो किसी सदाचारी ब्राह्मण से अपने निमित्त करा ले या अगले दिन उससे

दुगुना, तीसरे दिन चौगुना जप करना चाहिये उससे अधिक विक्षेप पड़ने पर अठ्ठान फिर से प्रारंभ करना पड़ता है।

सूतक के सम्बन्ध में शास्त्रों का मत है कि व्रत, यज्ञ, विवाह, होम, पूजा और जप के प्रारंभ कर देने के बाद सूतक नहीं लगता, प्रारम्भ करने से पहले सूतक और आशौच लगते हैं। सूतक में प्रचलित लोकाचार मान्य है।

जप की परिभाषा कृते हुए तंत्र कहता है—“जपः स्यादक्षरावृत्तिः”

—अक्षरों की वारंवार आवृत्ति को जप कहते हैं।

जप तीन प्रकार का होता है—वाचिकः, उपांशु और मानसिक। ऊँचे स्वर में श्रवणीय ध्वनि से किया गया जप वाचिक कहलाता है। थोड़े ओंठ चलाते हुए फुसफुसाहट के रूप में किया गया जप उपांशु होता है। सिर गर्दन को बिना हिलाये जीभ और होंठ को न चलाये तथा मन से चिन्तित बीज को दांतों से दबाये (चलाये) बिना किया गया पर जप मानसिक कहलाता है।

पुरश्चरण के लिए सर्वोत्तम समय ग्रहण का है, ग्रहण के पहले दिन निराहार रहकर ग्रहण के समय नदी में नाभिमात्र जल में खड़ा रहकर जब तक ग्रहण रहे तब तक मन्त्र जप करता रहे फिर जितना मन्त्र जप किया उसका दशांश हवन आदि करके मन्त्र की सिद्धि के निमित्त गुरु की अर्चा करके उसे प्रसन्न करे। ऐसा करने से देवता प्रसन्न होते हैं और पुरश्चरण के बिना भी मन्त्र सिद्ध होता है। विनियोग के बाद मन्त्र के देवता की पूजा की जाती है। पूजा दो प्रकार की होती है सनिर्मल्य और अनिर्मल्य। अनिर्मल्य मानसी पूजा उत्तम पूजा होती है क्योंकि उसमें बाह्य उपकरण नहीं रहते, षट् चक्रों को पंच तत्त्वों का प्रतिनिधि बनाकर पूजा की जाती है। यह पूजा साधारण स्तर में समान्य जन के लिए संभव नहीं रहा करती। पूजा में पंचोपचार के नाम पर जिन उपकरणों को पूजा में आवश्यक माना जाता है उनका कारण यह है कि हम जा अन्तःकरण से करेंगे, अन्तःकरण से एक रूपता तब तक नहीं हो सकती जब तक बाह्य अर्थात् स्थूल से ऊपर न उठ जाए इसलिए पांच तत्त्वों के प्रतीक रूप में इन पदार्थों को हम उपास्य देवता के आगे इसलिए अर्पित करते हैं कि इनके स्तर से ऊपर उठने की क्षमता और

आज्ञा हमें मिल जाए, जो पूजा इन प्रतीक द्रव्यों के बिना की जाती है वह उच्च स्तर की होती है, उसमें मुद्रा का महत्व होता है। धूप, दीप, गन्ध, पुष्प आदि का काम उसमें मुद्रा से ही सम्पादित होता है। दूसरे प्रकार की सनिर्मल्य पूजा में मनोरम उपकरण काम में लाये जाते हैं। सनिर्मल्य पूजा उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ भेद से तीन प्रकार की होती है। ऊपर-इसी अध्याय में वर्णित उपयुक्त द्रव्यों से की गई पूजा उत्तम होती है, मध्यम पूजा में सुलभ उपकरणों से की पूजा मानी जाती है और कनिष्ठ पूजा में पत्र, पुष्प, जल से की गई पूजा होती है। पूजा के तीन भेद सात्विकी, राजसी, तामसी भी होते हैं। निर्मल अन्तःकरण वाले, शास्त्रों के मर्मज्ञ ऋषिकल्प लोग जो पूजा करते हैं वह सात्विकी पूजा होती है इससे मुक्ति प्राप्त होती है। सुख एवं राज्यादि लाभ के लिए की गई पूजा राजसी होती है। तपोनिष्ठ, भगवत् तत्त्व के ज्ञाताओं द्वारा की गई पूजा राजसी होती है। स्त्रियां, बालक, वृद्ध, अल्पज्ञ लोग भक्तिभावना से जो पूजा करते हैं वह तामसी कहलाती है। यहां तामसी का अर्थ तमोगुणवती नहीं बल्कि पूजोपचारों के स्थूलरूप होने से तामसी कहा गया है। पुरश्चरण के समय अनेक प्रकार के प्रत्वाय एवं व्यतिक्रम आ जाने पर विविध प्रकार की पूजा और की जाती है जिनमें आतुरी पूजा तब की जाती है जब साधक बीच में बीमार हो जाए। स्नान, दान्तुन आदि न कर पाये तब सूर्य भगवान् के अथवा प्रतिमा के दर्शन करके मूल मन्त्र को एक बार जप करके पुष्पाक्षत इनके अर्पित कर दे। थका हुआ बीमार और उपसावादि से वलान्त होने पर देवता, अग्नि, गुरु और ब्राह्मण की पूजा करके देव प्रतिमा से 'न मे दोषोस्ति किंचन' अर्थात् विवशतावश मैं पूजा नहीं कर सका हूं इसमें मेरा कोई भी दोष नहीं है इसलिए कृपा करके मुझे क्षमा कीजिये ऐसी प्रार्थना करके जप कर लेना चाहिये। त्रासिनी—पूजा वह होती है जब हमें पूजा के कुछ उपचार मिलें, कुछ न मिलें और केवल पानी या भावना से ही पूजन करनी पड़े। दुर्बोधिनी पूजा तामसी पूजा जैसी ही होती है इसमें मूल मूर्ति के अंगों की पूजा की जाती है।

आराधना करते समय यदि पंचोपचार से भी पूजा करने का सामर्थ्य नहीं है तो केवल भावना से ही पूजा कर लेनी चाहिये। पूजा के निमित्त आवश्यक वस्तु अपने ही व्यय से मंगानी चाहिये, दूसरे के धन से लाये गए उपकरणों से की गई पूजा का आधा ही फल मिलता है। पूजा में पुष्प देवता

के मस्तक पर चढ़ाने चाहिए, देवता का मस्तक पुष्पों से ढंका रहना चाहिए, पूजा के समय देवता के ऊपर हाथ नहीं घुमाना चाहिए। पूजा के पश्चात् जप करना होता है। जप के सम्बन्ध में आवश्यक विवरण दिया जा चुका है तदपि न्यास जैसी विधियों का निर्वाह अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए। न्यास को आत्मयज्ञ कहते हैं। न्यास से हम उन केन्द्रों को हाथ की विसर्जनशील विद्युत के स्पर्श से जागृत किया करते हैं जिनका हमारी देह व्यापार के संचालन में महत्त्वपूर्ण योग है। यह तथ्य सभी लोग जानते हैं कि हमारा देह पंचकोशिक है और पडंग है। पांच कोशों में अन्न, प्राण, मन, ज्ञान और आनन्द आते हैं। अन्नमय कोश से हमें घर्षणशील विद्युत मिलती है, प्राणमय कोश दोनों प्रकार की विद्युत—पार्ष्णिक एवं चुम्बकीय—का संग्रह एवं विनियोग करने वाला केन्द्रक है। योग में एवं शरीरशास्त्र में प्राण, वायु के एक स्वरूप का बोधक है जो हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका को संभालता है, संज्ञावाही (सेन्सेसनल नर्व्स) नाड़ियों में क्रियाशील रहता है तथा शरीर को सड़ने से रोकता है एवं स्वच्छ रखता है, इसे ऋषि कहा जाता है। ऋषि अत्यन्त पवित्र सत्ता को कहते हैं। विज्ञान की दृष्टि से हम इसे शक्तिमय देह भी कह सकते हैं। व्यक्तित्व के साहस और सामर्थ्य का आधार यही देह बनता है। मनोमय कोश अनुभूति का केन्द्र है तथा विचारों के रूपा में यह चुम्बकीय विद्युत का निर्माण करता है। संज्ञा वाहिनियों एवं इन्द्रियों का यह अधिष्ठाता है। ज्ञानमय कोश बुद्धि का क्षेत्र है इन सबसे आगे आनन्दमय कोश है। आनन्द सबका अभीष्ट विषय है क्योंकि उसका कोई विकल्प वा विपरीत स्थिति नहीं है। अनाहार या मूर्च्छा या व्याधिग्रस्त अवस्था में प्रारम्भिक कोश निःसंज्ञ हो जाते हैं इसलिए परतर कोशों की अवस्था ग्रहण नहीं करते वैसे भी आनन्दमय कोश प्रायः संकुचित अवस्था में ही रहा करता है, साधना एवं अभ्यास के बल पर इसे विकसित करने का वातावरण बनाया जाता है।

सामान्यतया तीन प्रकार के न्यास किये जाते हैं पहला विनियोग में वर्णित विवरणों का उच्चारण करके उनके आगे नमः जोड़कर किया जाता है, दूसरा करन्यास होता है जिसमें दोनों हाथों को आमने-सामने करके उन मन्त्र पदों या वर्णों के आगे अंगुष्ठाभ्यां नमः, तर्जनीभ्यां नमः, मध्यामाभ्यां नमः इस प्रकार बोलते हुए दोनों अंगूठों, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठा को मिलाया जाता है फिर करतल पृष्ठाभ्यां कहकर दोनों हाथों

को मिलाकर हाथ धोने जैसी मुद्रा की जाती है। तीसरा षडंग न्यास होता है जिसमें हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय, अस्त्र पर किया जाता है। हृदय के साथ नमः (हृदयाय नमः), शिर के साथ स्वाहा (शिरसे स्वाहाः), शिखा के साथ वषट् (शिखायै वषट्), कवच के साथ हुम् (कवचाय हुम्), नेत्रत्रय के साथ वौषट् (नेत्रत्रयाय वौषट्), अस्त्राय के साथ पट् (अपने दाहिने हाथ को मस्तक पर से घुमाते हुए ताली देना तथा ताली वजाने के साथ अस्त्राय पट्) का प्रयोग होता है।

न्यास सृष्टि, स्थिति एवं संहारक्रम के भेद से तीन प्रकार का होता है। शिर, आंख, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य पाद के क्रम से किया जाने वाला न्यास सृष्टि न्यास होता है। ऋष्यादि न्यास करने की परम्परा सृष्टि न्यास ही है। नाभि से प्रारम्भ करके हृदय पर समाप्त किया जाने वाला न्यास स्थिति न्यास होता है। पैरों से प्रारम्भ करके शिर पर समाप्त होने वाला न्यास संहार न्यास कहलाता है।

शिर पर जहां हाथ रखने का है वहां शिर पर एक अकेली मध्यमा अंगुलि ही रखी जाएगी। शिखा पर हाथ की मुट्ठी बांधकर रखी जाएगी आंखों पर मध्यमा, ललाट मध्य में तीसरे स्थान पर तथा तर्जनी अनामिका दाहिनी-बायीं आंख पर, मुख में अंगुष्ठ और अनामिका, हृदय में अंगुष्ठ और कनिष्ठिका, नाभि में अंगुष्ठ और अनामिका, गुह्य में केवल अंगुलियां, पैरों और घुटनुओं में सारी अंगुलियां एवं अंगूठा। इनमें इन अंगुलियों से इन स्थानों को छूया जाता है। गुह्यांग को बिना छूये केवल संकेत किया जाता है। गृहस्थ लोगों को सृष्टि एवं स्थिति क्रम का न्यास करना चाहिये। यतियों एवं वनवासियों को संहार क्रम का, विरक्त किन्तु गृहस्थी को संहार क्रम का, समन्ती किन्तु वनवासी को स्थिति क्रम का तथा विद्यार्थी को सृष्टि एवं स्थिति क्रम का न्यास करना चाहिये। मानसी पूजा में उच्चतर स्थिति प्राप्त न हो तथा ऐसी परिस्थिति में फंस जाए जहां उपकरण न मिल सकें तो 'यं रं लं, वं, हं पंचतत्त्वात्मकं पंचोपचार समर्पयाभि' कहकर ध्यानस्थ देवता का अर्चन करके मानसिक जप करना चाहिये मानसिक जप में बाह्य शुद्धि एवं स्थान शुद्धि की आवश्यकता नहीं रहती, यह कहीं भी कैंसी भी स्थिति में किया जा सकता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी भी मन्त्र को कार्यक्षम करने के लिए पुरश्चरण किया जाता है। पुरश्चरण से मन्त्र सिद्ध हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं, शास्त्रोक्ति विधान भी अपने स्थान पर सही है फिर भी अनेक बार मन्त्र जाग्रत नहीं होता जिसका कारण होता है—हमारे में पात्रता का नहीं होना। किसी भी मन्त्र विशेष का पुरश्चरण करने के लिए षट्कर्मों के देवता या उस देवता के गायत्री मन्त्र का जा करने का विधान है इससे साधक की पात्रता का विकास होता है। इस पर भी मन्त्र सिद्ध नहीं हो तो तंत्र शास्त्र का परामर्श है कि एक ही प्रयोग को बार-बार करता जाए, तीन वर्ष में मन्त्र सिद्ध होगा ही। इसके बावजूद भी यदि कदाचित् सिद्धि न मिले तो उसके दस संस्कार करके प्रयोग करना चाहिये तब मन्त्र की सिद्धि होती है। कुछ लोग इन संस्कारों से मन्त्र को पहले ही संस्कारित कर लेना चाहते हैं मेरा अनुभव यह कहता है कि साधक पहले उस मन्त्र को जपे, यथोक्त पुरश्चरण कर ले तभी ये संस्कार करने चाहिये। पुरश्चरण तीन प्रकार के होते हैं—कालिक, मात्रिक और उभयात्मक। कालिक पुरश्चरण वे होते हैं जिनमें एक नियत समयावधि में जितने जप हो जाएं। मात्रिक पुरश्चरण वह होता है जिसमें समयावधि को प्रमुखता न देकर मात्रा की गणना की जाती है। उभयात्मक में निश्चित समयावधि में निश्चित मात्रा में जप करने होते हैं।

कालिक पुरश्चरण ग्रहण स्पर्श से ग्रहण मोक्ष तक जप करने से पुरश्चरण सम्पन्न होता है। सूर्योदय से लेकर अगले सूर्योदय तक जपादि करने से भी कालिक पुरश्चरण होता है।

मात्रिक पुरश्चरण में जितनी मात्रा में जप करने से पुरश्चरण होता है उसे समान संख्या में प्रतिदिन करने से मात्रा को आधार माना जाता है।

उभयात्मक पुरश्चरण मृतक के आशौच काल में तथा सूतिका काल में। आशौच और स्यावड़ दस दिन तक माने जाते हैं इसलिए जहां मृत्यु हुई है अथवा जन्म (पुत्र का) हुआ है उस घर में दस दिन तक एक हजार प्रतिदिन जप करने से पुरश्चरण होता है। किसी भी मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ करके अगले मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तक ग्यारह माला प्रतिदिन जपने से, कृष्ण अथवा शुक्ल पक्ष की अष्टमी अथवा चतुर्दशी को प्रारम्भ करके सूर्यास्त तक, ग्यारह दिन का पुरश्चरण कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी से प्रारम्भ करके शुक्ल पक्ष की नवमी तक, (इसमें अष्टमी और नवमी की रात्री

में विशेष पूजा की जाती है तथा दशमी को पारणा की जाती है) अष्टमी से प्रारम्भ करके चतुर्दशी तक सात दिन का पुरश्चरण होता है।

वैष्णव मन्त्रों का पुरश्चरण कार्तिक, फाल्गुन अथवा वैशाख के महीने में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से प्रारम्भ करके एकादशी पर्यन्त ग्यारह दिन का पुरश्चरण किया जाता है। किसी भी चतुर्दशी से प्रारम्भ करके अगली चतुर्दशी तक पन्द्रह दिन का पुरश्चरण शिव के मन्त्रों का किया जाता है। गणपति के मन्त्रों का पुरश्चरण भाद्रपद, मार्गशीर्ष, माघ माह के प्रथम बुधवार से अथवा नवरात्रों में (आश्विन और चैत्र शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक) शक्ति के मन्त्रों का नवरात्र में, अथवा मंगल या शनिवार को नरमुण्ड लाकर उसे पंचगव्य से शुद्ध करके चन्दनादि पदार्थों से सुवासित करके अपने डेढ़ हाथ की दूरी पर रखकर रात्रि में एकान्त स्थान में बैठकर रात्रि के दूसरे प्रहर में प्रारम्भ करके (मन्त्र बड़ा हो तो अन्यथा मध्यरात्रि से) एक हजार जप करने से पुरश्चरण सम्पन्न हो जाता है। प्रायः सूर्योदय से प्रारम्भ करके, मध्याह्न तक जा करना, फिर संध्या समय से पहले प्रहर में जा करना ठीक रहता है, रात्रि के दूसरे प्रहर में जप करने का विधान है। दिन का तीसरा और चौथा प्रहर अवकाश का रहता है। यह व्यवस्था है, नियम नहीं है, जिन प्रयोगों में मंत्र छोटा होता है अथवा दिन-रात में प्रवर्तमान ऋतु के अनुसार साधक ने अपने जप का समय निश्चित कर लिया है, उनके लिए यह व्यवस्था शिथिल रहती है। हवन भी रोज करना ही ठीक रहता है इसलिए अपनी सुविधा के अनुसार यदि प्रातःकाल ही हवन कर लिया जाता है तो कोई आपत्ति नहीं। शरद ऋतु के प्रारम्भ में चतुर्थी से नवमी तक छः दिनों का पुरश्चरण भी किया जाता है। □

मांत्रिकप्राणप्रतिष्ठा की संक्षिप्त विधि

जिस किसी यंत्र या मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा करनी हो उसे स्नानादि करा कर आसन पर स्थापित करके विनियोग करे—

अस्य श्री प्राणप्रतिष्ठामंत्रस्य ब्रह्म विष्णु महेश्वराः ऋषयः ऋग्यजुः सामानि छन्दांसि क्रियामय वयुः प्राणाह्या देवता आं बीजम् ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकम् अस्मिन् यंत्रे, चित्रे, मूर्ती (जिसमें भी करनी हो उसका नाम ले) प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः

तब उस यंत्र को दोनों हाथों से ढंक कर “ओम् आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोहम्—यंत्रस्य प्राणाः इह प्राणाः” बोले एवं यह भावना करे कि इस मन्त्र के प्रभाव से उसमें प्राण आ गए हैं ऐसे ही आगे भी बोले।

“ओम् आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोहम् अस्य जीवः इह स्थितः”

फिर इसी मन्त्र को बोलकर—अस्य सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि। फिर इसी मन्त्र (ओम् आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोहम्) से “अस्य वाङ्मनः त्वक् चक्षु श्रोत्र जिह्वा घ्राण पाणि पाद पायूपस्थानि इहैव आगत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा” कहकर हाथों को हटा लें।

इसके पश्चात् पन्द्रह प्रणव मन्त्रों से इसके पन्द्रह संस्कार करने चाहिए।

कीलन कील होने को साधारण एवं स्वाभाविक स्थिति है किन्तु कहीं-कहीं यह अस्वाभाविक, विरूपताजनक और बाधक बन जाती है। तंत्र कहता है—“दुष्टोर्णः कीलको ज्ञेयः सिद्धेस्तु प्रतिबन्धकः” अर्थात् मन्त्र में कोई दूषित बीज ही कील हुआ करता है तथा यह मन्त्र के सिद्ध होने में अवरोध उत्पन्न करता है। अनेक मन्त्र इस प्रकार के होते हैं जिनमें कील

सहज रूप में आ जाता है। कुछ ऐसे भी मन्त्र हैं जिनमें ऋषियों ने जान-बूझकर कीलक वर्ण जोड़ दिया है इसके पीछे उनका एक ही विचार रहा कि वे मन्त्र तुरन्त सिद्धि देने वाले थे, उनसे अहित अधिक हो सकता था अथवा वे बहु उपयोगी एवं क्षिप्र सिद्धि दाता रहे थे तथा मनुष्य की चञ्चल वृत्तियों का उनको ज्ञान था इसलिए उन्होंने कीलित कर दिया। त्वरित मन्त्र की विधि इसमें दे रहा था किन्तु वह शापित भी था और कीलित भी, उसके उत्कीलन की विधि अनेक सम्प्रदायों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में दी गई थी इसलिए साधना में सरल तथा नाम के अनुसार (त्वरित याने शीघ्र) सिद्धि-प्रद भी था किन्तु यही देखकर नहीं दिया। किस मन्त्र में कौन-सा अक्षर कीलक है तथा उसे निरस्त करने के लिए क्या विधि हो—यह स्वतन्त्र विषय है और इतना विशद् एवं विस्तृत विवेचन यहां दे पाना सम्भव नहीं है। अनेक मन्त्र इस प्रकार के होते हैं जिनमें कीलक शुभ एवं सिद्धिदायक माना जाता है जैसे और पेड़ों में पड़ी गांठ उसके उपयोगी बनने में बाधक होती है, मूर्ति बनाने वाले, किराड़े एवं अन्य वस्तु बनाने वाले शिल्पी भली प्रकार जानते हैं कि किस लकड़ी की गांठ कोई अप्रियता या हानि नहीं पहुंचाएगी तथा किस लकड़ी की गांठ शोभा बढ़ाएगी। तंत्र ने एक उदाहरण दे दिया है “चन्दनेषु त्रयः श्रेष्ठाः ग्रन्थिकर्पः कोटराः” व्यवहार में हम देखते हैं कि सभी लोगों में कोई न कोई खोट रहता है किन्तु वही खोट किसी में अन्दाज बन जाता है, किसी में विशेषता और किसी में शैली जब कि किसी में वह सारे गुणों को ढांप देता है जैसे दूध में खटाई की हल्की-सी बूंद।

जिस मन्त्र में जो बीज वातावरण के विरुद्ध पड़ता है वही कीलक होता है। वैसे ऋषियों ने इन कीलकों का दोष परिहार करने के लिए उपायान्तर रच दिए हैं जिनसे उनका दोष, दोष नहीं रहता। उदाहरण के लिए जिस मन्त्र में ‘ह्रीं’ का दो बार प्रयोग हो उसमें कीलक रहते हुए भी असिद्धिप्रद नहीं रहता। ‘हुम्’ प्रारम्भ में और ‘ओम्’ अन्त में हो, उसमें भी ‘ह्रीं’ जोड़ देने से कीलक दोष नहीं रहता। ‘ओम्’ एवं ‘फट्’ जिसके आदि एवं अन्त में हों उसमें भी ‘ह्रीं’ बीज जोड़ देने से कीलक दोष शान्त हो जाता है। कीलक निराकरण की पद्धति अनेक सम्प्रदायों की अपनी-अपनी है, कोई उस कीलक को बीज मन्त्र से निकालकर उसके स्थान पर दूसरा बीज जोड़ देते हैं, कोई उस कीलक का दोष परिहार करने के लिए अन्य बीज लगा देते

हैं और कीलक को रहने देते हैं अनेक मन्त्रों में विनियोग में ही कीलक का उल्लेख किया रहता है। अधिकतर न्यास करते समय कीलक को नाभि में क्षेपित करते हैं और हमारी शरीर रचना में नाभि एक कील की तरह है जो व्यवस्थित रहने पर सारे शरीर को व्यवस्थित रखती है, न्यास से हम इसी व्यवस्था को संगत करते हैं। □

उत्कीलन की सामान्य विधि

शक्ति सम्पन्न मंत्र कीलित है, कई शापिक भी। ब्रह्म गायत्री में और सप्तशती के प्रयोग में शाप विमोचन अनिवार्य है तो अन्य मन्त्रों में उत्कीलन एक अनिवार्य विधि है। सिद्ध पुरुष अथवा जिसमें श्रद्धा हो उससे दीक्षा लेने के पश्चात् ग्रहण किया हुआ मन्त्र स्वतः उत्कीलित हो जाता है। जिनको ऐसी सुविधा नहीं मिलती, वे प्रस्तुत विधियों से उत्कीलित कर सकते हैं। स्मरण रहे जिन मन्त्रों के उत्कीलित की विशेष पद्धति दी गई है उनका उत्कीलन उस विधि से अवश्य किया जाए। जिस मन्त्र या विद्या की साधना करनी हो उसके आदि और अन्त में 'ह्रीं ओम्' को लगाकर एक माला जपने से उत्कीलन हो जाता है। अथवा गौरोचन, कपूर, कस्तूरी, गजमद, अगर, केसर, लाल व सफेद चन्दन से साधना किए जाने वाले मन्त्र को भोजपत्र पर एक सौ आठ बार लिखे। अच्छा रहे एक सौ आठ टुकड़े अलग-अलग करके लिखे, एक ही पत्ते पर एक सौ आठ बार लिखने में कोई आपत्ति नहीं है। इनकी पंचोपचार से पूजन करके ब्राह्मण भोजन और उनका आशीर्वाद लेकर किसी तांबे के पात्र में उन्हें रखकर नदी में ले जाकर इन्हें एक-एक कर प्रवाहित कर दे। उत्कीलन अथवा साधना करने वाले में ये छः गुण आवश्यक हैं, मैं सफल होऊंगा यह विश्वास सिद्धि का प्रथम लक्षण है, श्रद्धा दूसरा, गुरु का पूजन एवं उसमें अटूट आस्था तीसरा, सबके प्रति समान भाव चौथा, इन्द्रियों को संयम में रखना पांचवां, कम भोजन (हित, मित, पथ्य, हविष्य) छठा लक्षण है, ये साधना के षडंग हैं। □

मन्त्र त्याग की पद्धति

कई बार भ्रम अथवा अज्ञानवश ऐसे मन्त्र को जपने लगते हैं जो हमारे लिए प्रतिकूल होता है। मन्त्र की प्रतिकूलता का यही चिन्ह है कि उसे जपने से हमें मानसिक अशान्ति, भौतिक सन्ताप और विषमताएं अकल्पित रूप से मिलने लगती हैं—ऐसे मन्त्र का जप या अनुष्ठान यों ही बन्द कर देने का व्यक्ति दोष भागी बनता है इसलिए जिस प्रकार मन्त्र का अनुष्ठान प्रारम्भ किया था उसका विसर्जन भी विधिपूर्वक ही किया जाए। यों प्रत्येक अनुष्ठान में विविध प्रकार के उपद्रव और विघ्न आते हैं। किन्तु प्रतिकूल मन्त्र में आने वाले विघ्नों और इन विघ्नों में अन्तर होता है जिसे मर्मज्ञ व्यक्ति पहचानता है। परित्याग करने का इच्छुक व्यक्ति किसी विद्वान तंत्रज्ञ के पास प्रातः काल जाकर अपनी विपत्ति का निवेदन करते हुए उनसे प्रार्थना करे कि अमुक मन्त्र का विसर्जन करना चाहता हूं अतः आप कृपा करके यह विधि सम्पन्न कराइए।

शुभ दिन देखकर उसके निर्देशन में (ऐसा सम्भव न हो तो स्वयं ही) विसर्जन विधि सम्पन्न करे। सुन्दर शुद्ध किए घर में मण्डल बनाकर (मंडल सात, पांच या एक जैसा हो—अनाज से बनाया जाता है) मंडल बनाना संभव न हो तो षोडशमातृका, पंच देव, नवग्रहों की प्रतीक ढेरियां अक्षत से बना ले और अष्टदल कमल अक्षतों से बना उसमें गणपति को स्थापित कर इनका पूजन करे। इस मण्डल में एक घड़े में गंगाजल अथवा तीर्थजल भरके उसमें इष्ट देव का विलोम जप करके देवता का पूजन करे। यदि देवता का परिवार रहा हो तो उसका भी पूजन करे। यंत्र हो तो उसके आवरण का पूजन करे। फिर विलोम मन्त्र से एक हजार आहुतियां गाय के घी से दे। आहुति में मन्त्र हो विलोम जपा जाएगा स्वाहा का विलोम 'हास्वा' नहीं बोला जाएगा। इसके बाद एक सौ आठ बार तर्पण किया जाएगा। तर्पण में मूल मन्त्र विलोम

विधि से बोलकर 'तर्पयामि नमः' बोलते हुए अंजलि से जल छोड़ा जाएगा (अंजलि से अर्थ दाहिने से ब्रह्मातीर्थ से है) हवन तर्पण के पश्चात् देवताओं को बलि दी जाएगी। बलि में खीर गंध पुष्प पत्र में रखकर उन देवताओं का मन्त्र बोल दिया जाएगा। प्रथम बलि का मन्त्र है—“ओम् तत्सत् प्राणबुद्धिदेह-धर्माधिकार जाग्रत्स्वप्न सुषु पत्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणान्यतरा यच्चोदरेण शिशना वायच्च स्मृतं यदुवतं यच्च कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवेद् भूः स्वाहा।’ इस मन्त्र को सर्वत्र बोलकर पूर्वादि दिशाओं के स्वामी देवों को क्रमशः पृथक्-पृथक् पत्रों में बलि दे। पूर्व दिशा में इन्द्र को ऊपर वाला मन्त्र बोलकर—“आयाहीन्द्र सुराधीश शतमन्यो शचीपते नमस्तुभ्यं गृहाणेमं पुष्पधूपादिक बलिम्” से बलि दे। आग्नेय कोण में “ओम् तत्सत्.....” मन्त्र के बाद “आयाहि तेजसां नाथ हव्यवाह वर प्रद। गृहाण पुष्प धूपादि बलिमेनं प्रयोजितम्” बोल कर अग्नि को बलि दे। दक्षिण में मन्त्र के साथ ~ (यह मूल मन्त्र सर्वत्र जोड़ा जाएगा) “प्रेतनाथ त्वमायाहि भिन्नाजन समद्युते। बलिम् दत्त गृहाणेमं सुप्रीतो वरदो भव” से यमराज को, नैवृत्य कोण में “नमस्ते रक्षसानाथ निऋते त्वमिहागतः। गृहाण बलि पूजादि मया भवत्या निवेदितम्” से निऋति देवता को, पश्चिम वरुण को “एहि पश्चिम दिक्पाल जलनाथ नमोस्तुते। भक्त्या निवेदितां पूजा गृहीत्वा सुखमाप्नुहि” इस मन्त्र से। वाक्य कोण में “प्रभुजन प्राणपते त्वमहि सपरिच्छदः। मया प्रयुक्तं विधिवद् गृहाण बलिमादरात्’ वायु देव को उत्तर में “कुवेर तारकाधीशा वागच्छेतां सुरोत्तमो पुष्प धूपादिभिः, प्रीतो भक्तां वरदो मम” से कुवेर और चन्द्रमा को ईशान कोण में “ईश त्वमेहि भगवन्सर्वविद्याश्रयप्रभो पूजितः पुष्प-धूपाद्यैः प्रीतो भव विभूतये” ईशान देव को। ऊर्ध्व में “आयाहि सर्व लोकानां नाथ ब्रह्मन्समर्चनम्। गृहाण सर्वं विप्राग्र्य जगत्कर्त्रे नमोस्तु ते” ब्रह्मा को अंधः प्रदेश में “आगच्छत वरद श्रेष्ठ विष्णो विश्वस्य नायक। पूजितः परया भवत्या भवत्वं सुखदो मम” विष्णु को बलि प्रदान करे।

इसके बाद मन्त्र के देवता की पूजा विलोम मन्त्र से करे, देवता के परिवार हो तो उसकी भी पूजा करे। तब उससे प्रार्थना करे “अनुकल्पादिना-लोच्य मया तरल बुद्धिना, उपात्तो दुःखमंत्रस्त द्रोषं विनिनर्तय पापं प्रतिहतं मेस्तु भूयाच्छ्रेयः सनातनम्। तनोतु मम कल्याणं पावनी भक्तिरेव तु” यदि अभीष्ट मन्त्र का यंत्र सहित आराधना किया हो तो भोजपत्र पर कपूर,

आमला एवं चन्दन से चमेची या अनार की कलम से लिखकर घड़े पर रख दे। स्मरण रहे जिस घड़े में तीर्थजल भरकर इष्ट देवता की पूजा की गई थी वे इष्ट देव थे और यह मन्त्र के देव हैं इष्ट का परित्याग नहीं किया जाता, यदि यही इष्ट है तो फिर इसी के समर्पित किया जाएगा। समर्पण एवं पूजन के पश्चात् इस यंत्र को सिर में बांधकर घड़े के पानी से स्नान करे। तदन्तर दूसरे घड़े में पवित्र जल भरकर सिर पर बांधे पत्र को रख दे और इस घड़े को नदी या अन्य जलाशय में विसर्जित कर आये। □

शाबर मंत्रों को जाग्रत करने की विधि

यों तो शाबर मन्त्र इस युग के मन्त्र हैं और वे सरलता से सिद्ध होते जाते हैं तदपि अनेक बार उनको सिद्ध करने का प्रयत्न करने पर भी यदि वे कार्यक्षम नहीं हो तो जाग्रत करने का अनुष्ठान करे। रविवार की रात में कांसी की थाली राख से साफ करके उसे सामने रखकर प्रत्येक प्रहर के प्रारम्भ में अभीष्ट मन्त्र को एक सौ आठ बार जपे। चौथे प्रहर में मन्त्र जप के पश्चात् खैर की डण्डी से हिन्दी अथवा अपनी मातृभाषा में यह कहे "हे मन्त्रदेव जाग्रत हो" और थाली को बजावे। रात-भर में चार प्रहर माने जाते हैं अपनी तरफ से अथवा किसी से पूछकर समय निर्धारित कर लें और प्रहर के प्रारम्भ में यह विधि सम्पन्न कर लें। □

पूजा रहस्य

मन्त्रोपासना में पूजा एक अनिवार्य अंग रहती है। ध्यान के पश्चात् पूजा की जाती है। पूजा वस्तुतः क्यों की जाती है, कैसे की जानी चाहिये इन प्रश्नों का उत्तर 'तंत्र दर्शन' में दिया गया है। पूजा का अभिप्राय यन्त्र रचना और पूजा में अधिक प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट हो जाता है। यह हम जानते हैं कि हम शक्ति के साम्राज्य में रहते हैं, हमारा अणु-अणु शक्तिमय है शक्ति से दौलित-प्रेरित एवं क्रियामय है किन्तु इस अनन्त शक्ति को हम हमारे अभीष्ट की पूर्ति के लिए प्रयुक्त करना चाहते हैं। इसका अर्थ है कि हम नियत उद्देश्य के लिए उस अनन्त शक्ति को विशेष रूप में प्रस्तुत अथवा रूपायित करना चाहते हैं जैसे व्यवहार में हम पृथ्वी से प्राप्त पदार्थों को इच्छानुसार पात्र, अस्त्र, यंत्र एवं अन्य उपकरण बना लेते हैं उसी प्रकार मानसिक जगत् में इच्छित कामनाओं की पूर्ति के लिए विविध उपकरण बना लिए जाते हैं ये उपकरण ही मन्त्र हैं, ये ऐसे सूत्र हैं जो स्वयं ही कार्यक्षम होते हैं तथा मानवीय चेतना का आश्रय लेकर एक स्वतन्त्र, शक्ति सम्पन्न अलक्षित पुरुष बन जाते हैं। शक्ति के अनन्त विस्तार में से हमारे उपयोग एवं आवश्यकता के अनुरूप शक्ति प्राप्त करने के लिए ही यह अनुष्ठान किया जाता है। यंत्र पूजा में यंत्र के बाहर की ओर बनाया जाने वाला चतुष्कोण अर्थात् भूपुर हमारे सौर मंडल (कम से कम) का सूचक है क्योंकि ग्रहों की पूजा इस भूपुर के अन्दर की तरफ की जाती है अर्थात् हम शक्ति के अनन्त विस्तार में से एक नया निर्माण करना चाहते हैं और उस निर्माण को शक्ति के विराट् स्रोत से जोड़कर शक्ति सम्पन्न बनाये रखना चाहते हैं जैसे किसी ट्रांसफार्मर को हाट लाइन से जोड़े रखा जाता है। हम अपनी व्यक्तिगत शक्ति को उसकी सीमित क्षमता को, मन्त्र की रूपता एवं शक्ति का उस विराट् से तारतम्य एवं संगति बनाये रखने के लिए ही साधना की जाती है।

इसका प्राण वह मन्त्र है जो यंत्र के मध्य में स्थापित किया जाता है, उसके कोण अथवा दलों में उसी प्राण की विकसित शक्तियों एवं स्वरूपों को स्थापित किया जाता है। इस सबका आशय यह है कि हम हमारे निर्माण को, जिसकी विधि तत्त्वद्रष्टा ऋषियों ने बताई है, सचेतन करके अपने आपको उसमें ढालते हैं अथवा उसके सामर्थ्य को अपने में अवतरित करते हैं, दोनों ही स्थितियों में हम यंत्रमय होकर एक प्रतीक को अनुप्राणित करते हैं। पंचोपचार में प्रयुक्त होने वाले पांच पदार्थ, पांच तत्त्वों के प्रतीक हैं जिनको हम बहिरंगिणी पूजा में अनुलोम विधि में सजाते-समर्पित करते हैं। अनुलोम विधि में इसलिए कि हम निर्माण कर रहे हैं और निर्माण में ये तत्त्व अनुक्रम से विकसित संघनित एवं आयाम सम्पन्न होते हैं अर्थात् आकाश से वायु होता है, वायु से तेज, तेज से जल और जल से पृथ्वी इसी क्रम का निर्वाह करने के लिए आकाश का प्रतीक गंध, वायु का प्रतीक पुष्प, तेजस् का प्रतीक दीपक, जल का प्रतीक धूप और पृथ्वी का प्रतीक नैवेद्य चढ़ाते हैं। इन सबको अर्पित करके हम एक अलक्षित किन्तु अनुभव एवं विश्वास गम्य मन्त्र पुरुष किंवा मन्त्ररूप देवता से प्रार्थना करते हैं कि अब आप हमें इस तत्त्वमय स्तर से ऊपर उठने की अनुज्ञा दीजिए। इस प्रकार के बाह्य आचार एवं कर्मकाण्ड से हमारा निजत्व भौतिक सीमाओं से ऊपर उठकर शक्ति के अनन्त का साक्षात्कार करता है, वह इच्छित मात्रा में शक्ति को संग्रहीत एवं विसर्जित करने के लिए सुसंवाही पात्र बन जाता है। □

वैदिक प्रयोग

वेद और तन्त्र में कोई विरोध नहीं है। निष्पक्षभाव से देखा जाए तो दोनों ही व्यक्ति कल्याण एवं मुक्ति-साधन का मार्ग बताते हैं। तन्त्र ने उदार भाव से उन बन्धनों का उदात्तीकरण किया जिन पर वेद ने व्यवस्था का कठोर अनुशासन लगाया था किन्तु लक्ष्यगत अन्तर नहीं आने दिया। तन्त्र ने साध्य केन्द्रित करके साधनों को गौण किंवा लक्ष्य-निष्ठ बनाया है।

तन्त्र के पाँच आमनाय प्रमुख हैं, उनमें एक आमनाय वेद को भी उतना ही सम्मान देता है जितना तन्त्र को। वस्तुतः वेद और तन्त्र शैली के कारण भिन्न हैं, प्रयोजनगत भेद इनमें नहीं है। ऊर्ध्व और दक्षिण आमनाय वेद की ऋचाओं को जनहित में व्यवहार करने की विधि बताता है।

तन्त्र के बीजमन्त्र अर्थ की दृष्टि से दुर्बोध हो जाते हैं जबकि वेद के मन्त्रों का छन्द और अर्थ अपनी सुस्पष्टता के कारण व्यक्ति को आनन्दित करता है। मन्त्रों की शैली के भेद के कारण तन्त्र के देवताओं का रूप भी भिन्न हुआ है। जिस प्रकार तन्त्र के उपदेष्टा ऋषियों ने आत्मकल्याण के लिये शैली की सरणी पर विचार न करके उपयोगी विधा का संकलन करने में किसी प्रकार का दुराग्रह नहीं रखा, वैसा ही भाव एवं दृष्टि इस प्रयोग समूह का संचय करते समय मेरी रही।

इस क्षेत्र में आने पर लोगों ने जो अनुभव दिए, विविध समस्याओं का विश्लेषण करने पर जो तथ्य प्रकाश में आये उनका समाधान सतर्क और संग्राही दृष्टि से ढूँढता रहा। उसके परिणाम स्वरूप ही ये वैदिक ऋचायें संकलित हो सकी हैं। व्यक्तिगत रूप से मैं वेदों का प्रशंसक हूँ, उनके निर्दोष ज्ञान का समादर प्रत्येक भारतीय करता है। इन मन्त्रों से

जनकल्याण होगा—यह विश्वास है। इस संग्रह में वास्तुदोष शान्ति वाला प्रयोग मेरी दृष्टि में इस युग की सबसे बड़ी समस्या का समाधान है। सरकारी या सहकारी स्तर पर बने आवासों में जाकर रह जाने से और वास्तुशान्ति आदि कर्म न करने से उन मकानों में रह रहे व्यक्तियों के जीवन में जो समस्याएँ एवं विषमताएँ आती हैं उनका अति उपयुक्त समाधान देखने में नहीं आया था। प्रसंगवश एक ग्रन्थ में इस प्रकार का प्रयोग देखकर आश्चर्य हुआ। जिनके घर में सब प्रकार की सुख-शान्ति है किन्तु जो लोग समर्थ हैं, जिनको करने की सुविधा है वे उस मकान की वर्षगाँठ आगे के संग्रह में दिए गए वास्तुशान्ति वाले प्रयोग को वार्षिक रूप में कर सकें तो उत्तम रहे।

मेरुतन्त्र में दक्षिण मार्ग में वैदिक ऋचाओं के प्रयोग दिए गए हैं। इन सारे प्रयोगों में भगवान् शंकर परम उपास्य माने जाते हैं।

१. “स माहि सीमधु नव दिष्टो मधु वक्ष्यामि मधुमतीं देवेभ्यो वाचमुद्यासं शुक्षूषेण्यां मनुष्येभ्यस्तं मा देवा अवन्तु शोभायै पितरोन्मदन्तु ।”

इस ऋचा से घोर व्याधि का प्रकोप होने पर अथवा भयंकर अभिचार का प्रतिरोध करने के लिये प्रयोग किया जाता है। इस ऋचा का दस हजार जप करके एक हजार आहुति घी की देनी चाहिए।

२. “नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यः नमः ।”

जहाँ सर्प रहता है अथवा जहाँ गड़े धन पर सर्प रह रहा हो वहाँ घी और दूध की एक हजार आहुति इस ऋचा से एक माह तक रोज देने से स्वर्ण प्राप्ति होती है।

३. “या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पती ननु ये वा बिलेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।”

बिल में प्रवेश करते सर्प को देखकर वहीं इस ऋचा से एक हजार आहुति घी की दे। इससे बिल स्थित निधि प्राप्त होती है।

४. “ऋणुष्वपाजः प्रसिति न पृथ्वीं याहि राजेवामवां इभेन त्रिष्वी मनप्रसिति गृणानो स्तासिविध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ।”

यह प्रत्यंगिरा ऋचा है। इससे पित्तज व्याधियाँ और अग्निकृत भय नहीं होता है। प्रातः, सायं और मध्याह्न में जपना पड़ता है।

५. “काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ति परूषः परूषस्परि । एवा नो द्वौ प्रतनु सहस्त्रेण शतेन च ।”

“या शतेन प्रतनोषि सहस्त्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ।”

इन दोनों ऋचाओं से दूब और प्रवाल (मूंगा नहीं, एक पौधा) की दस हजार आहुति देने से व्यक्ति का मारकेश शान्त हो जाता है, बीस हजार आहुति देने से नगर का और चालीस हजार आहुति देने से देश अथवा जनपद के विघातक विघ्न शान्त हो जाते हैं ।

६. “आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणी-नाम् । संक्रन्दनो निमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ।”

“संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा”

“स इषुहस्तैः सनिषंगिभिर्वशी सं स्रष्टा स युध इन्द्रोगणेन सं सृष्टजित्सोमपा बाहु शर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता”

“बृहस्पते परिदीयारथेन रक्षोहा मित्रां अपबाधमानः । प्रभंजन्सेना प्रमृणो युधाष्ट जयन्त स्माकमेध्यविता रथानाम्”

“बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः अभि-वीरो अभिसत्त्वा सहौजाजैत्रमिन्द्ररथमातिष्ठ गोवित्”

“गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्मप्रमृणन्तमोजसा । इमं स जाता अनुवीर युध्वमिन्द्रं सखायो अनुसं रभध्वम्”

“अभिगोत्राणि सहसा गाहमानो दयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः दुश्च्यवनः पृतनाषाढयुध्योस्माकं सेना अबतु प्रयुत्सु”

“इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः देवसेना-नामभिभंजतीनाम् जयन्तीनाम् मरुतो यन्त्वग्रम्”

“इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्धं उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्”

“उद्धर्षय मघबन्नायुधान्युत्सत्त्वनां मामकाना मनांसि । उद्वृत्र-हन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः”

“अस्माकमिन्द्रः संभृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषव स्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मां उ देवा अवताह्वेषु”

“अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्ये परेहि । अभिप्रेहि
निर्दह हत्सुशोकैरन्धे नामित्रास्तमसा सचन्ताम्”

“अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्म संशिते । गच्छामित्राप्रपदचस्व
मामीषां कंचनोच्छिषः”

“प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु उग्रा वः सन्तु बाहवो ना
घृष्या यथासथ ।”

“यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव । तन्न इन्द्रो बृह-
स्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वा हा शर्म यच्छतु”

“मर्माणि ते वर्मभिश्रद्धादयामि सोमस्त्वा राजाभृतेनाभिवस्तान् ।
उरोर्वरीयोर्वरूपस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानुदेवा मदन्तु”

से सोलह ऋचायें विजयप्रद रहती हैं । इनका पाठ करने से सिंह,
व्याघ्र, चोर, सर्प आदि का भय नहीं रहता । इनको पढ़कर प्रस्थान
करने पर व्यक्ति भयमुक्त रहता है, तथा उसकी विजय होती है ।

७. “स नो भुदनस्य प्रजपते यस्य त उपरिग्रहा यस्य वेह अस्मै
ब्रह्मणस्मै क्षत्राय महिशर्म यच्छ स्वाहा”

इस ऋचा से एक हजार आठ आहुतियाँ धी से “इन्द्राय स्वाहा”
बोलकर देने से गृह निर्माणगत दोष शान्त होते हैं ।

“स्योना पृथिवी नो भवानक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः
अप नः शोशुचदधम्”

भूमि प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति इस ऋचा को स्नान कर पवित्र
अवस्था में जप करें ।

“आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च हिरण्ययेन
सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन्”

संयम बरतते हुए स्नानादि करके इस ऋचा का एक सौ आठ
वार पाठ करने से व्यक्ति सम्पूर्ण आयु भर रोग-शोक रहित होकर
जीता है । रात्रि के समय इस ऋचा का पाठ करके एक सौ आठ आहुति
धी की देने पर व्यक्ति निरोग और दीर्घायु होता है ।

“वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय
नमः कल विकरणाय नमो बल विकरणाय नमो बलाय नमो बल प्रमथ-
नाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः”

“अघोरेभ्योथ घोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्र रूपेभ्यः”

“सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः । भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः”

“तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्”

“ईशानः सर्वं विद्यानामीश्वरः सर्वं भूतानाम् । ब्रह्माधिपतिं ब्रह्मणोधिपतिं ब्रह्म शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्”

“व्यम्बकं यजामहे सुगन्धिष्पुष्टि वर्धनम् ऊर्वाकृक मिव बन्धना-
न्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्”

भगवान् शिव की पूजा करके ये छः ऋचायें नित्य पढ़ने वाले व्यक्ति का मारकेश शान्त हो जाता है । इन्हीं छः ऋचाओं से घी का होम करने से घर में रोग-शोक शान्त हो जाते हैं ।

“उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम्”

इस ऋचा का पाठ करने से हृदय-रोग शान्त होता है ।

“या औषधीः सोमराज्ञीः विष्टिताः पृथिवीमनु । बृहस्पति प्रसूता-
स्ता अस्यै सन्दत्त वीर्यम्”

“अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्यति पूरुषः”

“याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परा गताः । सर्वाः संगत्य वीरु-
धोस्यै सन्दत्त वीर्यम्”

“मा वोरिषत्खनिता यस्मै चाहं खनानि वः । द्विपाच्चतुष्पाद-
स्माकं सर्वमस्त्वनानुरम्”

“औषधयः संवदन्त सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मण स्तं
राजन्पारयामसि”

इन पाँच ऋचाओं का पर्वों में तथा नित्य पाठ करने वाले वैद्य की चिकित्सा अधिक फल देती है, उसका यश फैलता है और जीवन में सुख प्राप्त करता है ।

“नमो वंचते परिवंचते स्तायूनाम्पतये नमो नमो निचेरवे परि-
चरायारण्यानाम्पतये नमो नमः । सकायिभ्यो जिघ्रांसद्भ्यो सुष्णताम्प-
तये नमो नमो सिमद्भ्यो नक्तंचरद्भ्यो विकृन्तानम्पतये नमो नमः”

“उष्णीषिणे गिरिचराय कुलंचानाम्पतये नमो नमः इषुमद्भ्यो

धन्वायिभ्यश्च वो नमः नमः आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्यो स्यद्भ्यश्च वो नमो नमः”

इन ऋचाओं के आठ हजार जप करने से एक पुरश्चरण होता है। पुरश्चरण के पश्चात् इसका प्रयोग किसी भी तरह से रोगी पर कर दे तो फोड़े आदि की असह पीड़ा भी शान्त हो जाती है।

“नम आशु शेणाय चाशुरथाय च नमः शराय चावभेदिने च । नमः वर्मिणे च वरुथिने च नमो विल्मिने च कवचिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च”

इस ऋचा का पाँच हजार पाठ करने पर पुरश्चरण माना जाता है। एक पुरश्चरण करने पर गंजापन नष्ट हो जाता है तथा पादुका सिद्धि प्राप्त होती है।

“नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्रायचारुणाय च नमः शंगवे च पशुपतये च नम उग्राय च भोमाय च”

“नमो अग्नेवधाय च दूरे वधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च । नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय”

“नमः शंभवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च”

इन तीन ऋचाओं का पुरश्चरण दस हजार पाठ करने पर होता है। दशांश हवन करने पर पुरश्चरण की सांगता सिद्ध हो जाती है। इस हवन की राख का लेप करने और थोड़ी मात्रा में खाने से राजयक्ष्मा जैसे रोग शान्त हो जाते हैं। छोटे रोग तो इससे कम समय में ही ठीक हो जाते हैं।

“क्ष्मां रुद्राय तवसे कर्पादिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मति । यथा नः शमसद्विपदे चतुष्पदे विश्वम्पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्”

इस मन्त्र की एक हजार आहुति तिल से रोज देने पर अयाचित धन लाभ होता है।

“आ रे ते गोघ्न उत पुरुषघ्ने क्षयद्वीराय सुन्तमस्ते ते अस्तु । रक्षाव नो अधि चेदं देव ब्रूह्यथो च नः शर्म यच्छद्विवर्हाः”

“स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं भवन्तं भीममुपलेह मुग्र । मृडा जरित्रे रुद्रस्तवानो अभ्यन्ते अस्मिन्निव यन्तु सेना”

“परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणवतु परित्वेषस्य दुर्मतिरघायोः अवस्थिरा
मघवद्भ्यस्तनुष्व मीडड्वस्तीकाय तनयाय मृड”

“मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव । परमे वृक्ष आयुधं
निधाय कृत्ति वसान आचर पिनाकं बिभ्रदागहि”

घोर भयंकर समय में इन ऋचाओं का पाठ करने से भय और
भय का कारण नष्ट हो जाता है ।

परकृत दोष निवारण

प्रायः सुनने में आता है—“किसी ने कुछ करा दिया” बुद्धिवादी
होने के कारण ऐसी बातों पर सहसा विश्वास नहीं करता, न दूसरे को
ही ऐसी भ्रान्तियों में उलझने के लिए कहता फिर भी अनेक ऐसे प्रसंग
देखने में आये हैं कि यह मानना ही पड़ा है । विद्या अपने आप में निर्दोष
है, यह प्रयोक्ता का ही दोष है कि वह उसका दुरुपयोग कर डालता है ।
शास्त्रज्ञ, कर्मनिष्ठ और सदाचारी व्यक्ति किसी भी स्थिति में दूसरे का
अनिष्ट नहीं सोचता पर कुछ लोग आवेशग्रस्त होकर अथवा लोभवश
होकर किसी व्यक्ति को पीड़ा देने वाले प्रयोग कर बैठते हैं ।

अनेक बार व्यक्ति स्वतः ऐसी कष्टप्रद स्थितियों से घिर जाता
है, इसके अनेक कारण हो सकते हैं । शास्त्र ने ऐसी विपत्ति को कृत्या
कहा है और उसकी शान्ति के लिये उपाय भी बताये हैं । ये प्रयोग वेद
सम्मत हैं इसलिये ऋचाओं का सम्यक् उच्चारण करने में सावधानी
बरतनी चाहिए अथवा किसी विज्ञ व्यक्ति से यह प्रयोग करा लेना
चाहिए ।

कृत्यानाशन मन्त्र

“यां कल्पयन्ति नोरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव तां ब्रह्मणा अपनिर्णुध्न
प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु”

विनियोग

अस्य प्रत्यंगिरामंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः प्रत्यंगिरा-
देवता ओं बीजं ह्रीं शक्तिः कृत्यानाशने विनियोगः ।

न्यास

ब्रह्मर्षये नमः शिरसि, अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे, प्रत्यंगिरादेवतायै

नमः हृदये, ओं बीजाय नमः गुह्ये, ह्रीं शक्तये नमः पादयोः, विनियोगाय नमः सर्वांगे ।

दूसरा न्यास

ओं यां कल्पयन्ति नोरयः ह्रीं हृदयाय नमः, ओं कूरां कृत्यां ह्रीं शिरसे स्वाहा, ओं वधूमिव ह्रीं शिखायै वषट्, ओं तां ब्रह्मणा ह्रीं कवचाय हुम्, ओं अपनिर्गुध्न ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं प्रत्यक् कर्तार-मृच्छतु ह्रीं अस्त्राय फट् ।

ध्यान

ध्यान के लिये—सिंह के समान मुखवाली, खुलेकेश, नंगा शरीर, हाथ में तलवार लिये हुए काले रंग की, नुकीले दांत वाली, भयंकर रूप की कृत्या का स्मरण करे ।

इस मन्त्र के दस हजार जप करने पर व्यक्ति कृत्यामुक्त हो जाता है । जप करते समय निर्दिष्ट आचरण का पालन करना चाहिए ।

प्रयोग की सांगता सिद्धि के लिये एक हजार आहुतियों का हवन करना चाहिए । हवन में समिधा अपामार्ग की रहें, हवनीय द्रव्य शकर, तिल, घी रहेंगे ।

हवन के समय एक त्रिकोण, उसके बाहर षट्कोण और उससे बाहर चतुष्कोण बनाना चाहिए । भीतर के त्रिकोण में कृत्यादेवी की और षट्कोण में उसके छः अंगों का पूजन करे ।

चतुष्कोण में दसों दिक्पालों का पूजन और बलि देनी चाहिए । बलि प्रदान करने का मन्त्र है—

“यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा, इन्द्रस्तं देवराजा भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु”

बलि में एक दोने में दही, सिन्दूर मिले उड़द, पूये और दीपक की बत्ती (जलती हुई) होती हैं । पूर्व दिशा का स्वामी इन्द्र है, इसलिये चतुष्कोण के पूर्व में इन्द्र, आग्नेय कोण का स्वामी अग्नि है इसलिये ऊपर लिखे मन्त्र में इन्द्र के स्थान पर अग्नि (यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा अग्निस्तं...) का नाम लेकर बलि प्रदान करनी चाहिए । दक्षिण में यम, नैऋत्य में निऋति, पश्चिम में वरुण, वायव्य में वायु,

उत्तर में कुबेर, ईशान में ईश, ऊपर ब्रह्म, नीचे अनन्त के नाम बोलकर बलिदान करना चाहिए ।

यह प्रयोग कृत्या शान्ति का था । यह अगला प्रयोग कृत्या को अनुकूल फल देने वाली बनाने के लिये किया जाता है ।

विनियोग

अस्य श्री कृत्यामन्त्रस्य प्रत्यंगिरा ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः कृत्या देवता मम रिपुनिग्रहायै जपे विनियोगः”

न्यास

प्रत्यंगिरा ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे, कृत्या-देवतायै नमः हृदये, विनियोगाय नमः सर्वांगे ।

मन्त्र

शीर्षष्वतीं कर्णवतीं विष्णुरूपां भयंकरीम् ।

यः प्राहिणोदिहाद्य त्वं नित्यं योजय स्वस्तिभिः ॥

दस हजार जप करने पर पुरश्चरण होता है । हवन की सामग्री और पूजा विधि तथा बलि पूर्व के प्रयोग की तरह करें ।

आगे लिखा जा रहा प्रयोग कृत्या को उसी पर भेजने का है जिसने भिजवाया है ।

विनियोग

अस्य मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः गायत्री छन्दः कृत्या देवता अरि-निवर्तने जपे विनियोगः ।

न्यास

वामदेवर्षये नमः शिरसि, गायत्री छन्दसे नमः मुखे कृत्या देवतायै नमः हृदये, विनियोगाय नमः सर्वांगे ।

मन्त्र

“येन दिष्ट्येह वदसि प्रतिपूरमधापिनी, तमेवातो निवर्तस्व मा स्याभ्यत्सो अनागसः”

शेष विधिविधान पूर्व प्रयोग की तरह है ।

ऐसा ही एक और प्रयोग

विनियोग

अस्य मन्त्रस्य वृद्धवशिष्ठो मुनिः अनुष्टुप् छन्दः कालाग्निरुद्रो
देवता ममारिविनाशने जपे विनियोगः ।

न्यास

वृद्धवशिष्ठ मुनये नमः शिरसि, अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे, काला-
ग्निरुद्र देवतायै नमः हृदये, विनियोगाय नमः सर्वांगे ।

मन्त्र

“अभिवर्तस्व कर्तरि निरस्तां ताभिरोजसा
आयुरस्य निवृन्तस्व प्रजाश्च पुरुषादिनि”
शेष विधि-विधान पूर्व प्रयोगों की तरह रहेंगे ।

निर्ऋति मन्त्र प्रयोग

बीहड़ जंगलों में निर्विघ्न यात्रा के लिए अथवा सर्प, चोर, प्रेत,
पिशाचादि के भय से मुक्त रहने के लिए निर्ऋति मन्त्र का प्रयोग किया
जाता है ।

मन्त्र

“ओं क्षं निर्ऋतये रक्षोधिपतये धूम्रवर्णयि खड्गहस्ताय प्रेत-
वाहनाय नमः”

ध्यान

किरीटिनं च पिगाक्षं धूम्राभं प्रेतवाहनम् ।
नाना रक्षोगणैः सेव्यं खड्गचर्मधरं भजे ॥

विधि

पाँच कोण का यन्त्र बनाकर उसके बाहर आठ कमल के पत्ते,
उसके बाहर एक चतुष्कोक बनाकर पूजा करे । पूजा में पाँच कोण वाले
चक्र में हृदय, शिर, शिखा, कवच और अस्त्र रूप पाँच अंगों का पूजन
करे । आठ कमल के पत्तों में दक्षिणावर्त क्रम से नवस्था, पाशिनी, वाणी
त्रासिनी, गुप्तचारिणी, राक्षसी, भीतिदा, कृत्या का पूजन करे ।
चतुष्कोण में दिक्पालों का पूजन करें ।

न्यास

ओं क्षं निर्ऋतये नमः हृदयाय नमः, ओं क्षं रक्षोधिपतये नमः शिरसे स्वाहा, ओं क्षं धूम्रवर्णाय नमः शिखायै वषट्, ओं क्षं खड्गहस्ताय नमः कवचाय हुम्, ओं क्षं प्रेतवाहनाय नमः अस्त्राय फट् ।

इन्हीं पदों से यन्त्र में पाँच कोणों में पंचांग का पूजन करे ।

पूरा मन्त्र होगा—

ओं क्षं निर्ऋतये नमः हृदयाय नमः हृदय श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि ।

किसी पत्र में इसके दस हजार जप करने पर तथा सामान्य रूप में तीस हजार जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है । □

नित्यकर्म

आराधना को कर्म कहा गया है। यह दो प्रकार का होता है नित्य और नैमित्तिक। नैमित्तिक वह होता है जो किसी प्रयोजन को लेकर किया जाता है। इसे काम्य कर्म भी कहते हैं। नित्यकर्म वह होता है जो बिना किसी कामना के किया जाता है। मेरुतन्त्र में एक प्रसंग आता है जिसमें पूछा गया है कि धनवान्, मध्यम श्रेणी के व्यक्ति, दरिद्र, गृहस्थ, परदेश में रहने वाले, प्रवास करने वाले, कारावास में रह रहे, सूतक आदि वाले, उपचारहीन व्यक्ति किस प्रकार अपना नित्यकर्म सम्पादित करें ?

इस पर भगवान् शंकर कहते हैं कि कर्म नौ प्रकार का होता है, तदनुसार ही उसका फल मिलता है। प्रथमतः सात्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का होता है फिर ये तीनों शुद्ध, मिश्र और गलित भेद से तीन-तीन प्रकार के हो जाते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

सात्विक शुद्ध—अहंभाव के बिना, ज्ञानपूर्वक पूरी निष्ठा और एकाग्रता के साथ, यति वा मुनि लोग (अथवा उनकी ही तरह रहते हुए) करते हैं वह शुद्ध सात्विक कहलाता है।

सात्विक मिश्र—इन्हीं गुणों से युक्त कर्म गृहस्थ, दरिद्र, रोगी, प्रवासी अथवा कारावास में रह रहा व्यक्ति करता है तो वह मिश्र सात्विक कहा जाता है। इस कर्म में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति अधिक बलवती होती है।

सात्विक गलित—कर्म वह होता है जिसमें व्यक्ति सर्दी आदि के कारण पूर्ण शुद्धता नहीं रखकर, धन की कमी (लोभ के कारण विशेष रूप से) किसी अन्य कार्य में व्यस्त रहने से अथवा स्त्री नियोग से किया जाता है।

राजस शुद्ध—गृहस्थी साधक पूरे मान-सम्मान एवं भक्तिपूर्वक उपचार सहित एकान्त में नियमपूर्वक पूजादि पूर्वक करता है, वह शुद्ध राजस कर्म कहलाता है।

राजस मिश्र—जो गृहस्थ व्यक्ति श्रद्धापूर्वक स्त्रोत अथवा कथा-पाठादि लोकभय से या देवता के भय से करता है वह मिश्र राजस कर्म कहा जाता है।

राजस गलित—जो व्यक्ति जनता को देवता के नाम पर धोखा देता है, पुण्य कार्य के नाम पर चन्दा करता है और उसे अपने पर खर्च करता है, प्रदर्शन के लिए पूजा-पाठ का आडम्बर रचता है वह गलित राजस कर्म कहलाता है।

तामस शुद्ध—कौल धर्म को समझकर अपने को पात्र बनाकर वाममार्गी विधि से दूसरे मार्गों की निन्दा न करते हुए जो कर्म किया जाता है वह शुद्ध तामस कहलाता है।

तामस मिश्र—वाम मार्ग का अनुसरण करके जो काम्य कर्म किया जाता है वह मिश्र तामस की श्रेणी में आता है।

तामस गलित को श्रेणी में वह कर्म आता है, जहाँ व्यक्ति अपने खान-पान के लोभ से वाममार्ग अपनाता है अथवा मारण जैसे घोर कर्म करता है।

इनके फल

शुद्ध सात्त्विक कर्म से मुक्ति, मिश्र सात्त्विक से स्वर्ग लोक के सुख, गलित सात्त्विक से सिद्धि एवं मानवीय गुण, शुद्ध राजस से स्वर्ग प्राप्ति, मिश्र राजस से कामपूति, गलित राजस से देहत्याग के पश्चात् पक्षी की योनि में जन्म, शुद्ध तामस से देवत्व प्राप्ति, मिश्रतामस से दुःख प्राप्ति, गलित तामस से नरकवास मिलता है।

टिप्पणी—इस विवेचन से व्यक्ति विभिन्न स्थितियों में अपना नित्यकर्म किस तरह सम्पादित करे—इस प्रश्न का सीधा उत्तर नहीं मिलता है फिर भी यह अवश्य ज्ञात हो जाता है कि हम हमारे कर्म को उदात्त रूप किस तरह दे सकते हैं। कर्म में भक्ति भावना का अपना महत्त्व है किन्तु वह भी अन्ततः हमारे मन को एकाग्र करने का माध्यम बनती है। एकाग्र हुआ मन देवता के प्रतीक से तारतम्य बिठला लेता

है। कर्म की श्रेष्ठता ज्ञान पर निर्भर करती है। ज्ञान बुद्धि का विषय होने से स्वतः पवित्र होता है, उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं होता, न संशय ही बचता है।

वस्तुतः सज्ञान होना ही कर्म की सार्थकता है। भक्ति की सरसता और उपादानों का संभार व्यक्ति को सुख और उपभोग की क्षमता दे सकता है, मुक्ति नहीं। ज्ञान का प्रकाश फैलने पर उपचारों का महत्त्व स्वतः क्षीण हो जाता है किन्तु ज्ञान की तटस्थवृत्ति के उदय होने से पहले भक्ति की भावुकता वैसे ही आवश्यक है जैसे प्रौढ़ होने से पहले युवावस्था।

शास्त्र काम्यकर्म का निषेध करता है और इसका स्पष्ट कारण भी है कि काम्यकर्म के निमित्त जो उपासना की जाती है वह कार्य सम्पन्न होने पर समाप्त हो जाती है। उस प्रयोजन के लिए जिस देवता रूप का आवाहन किया जाता है उसका विसर्जन किए बिना ही विस्मरण कर दिया जाता है और यह एक दोषपूर्ण कृत्य हो जाता है। इसके लिए शास्त्र में विसर्जन की विधि बताई है, उसे सम्पादित करने पर दोष नहीं लगता है पर कदाचित् दूसरी बार वैसा ही प्रयोग करना पड़े तो वह दुष्कर हो जाता है इसलिए सबसे अच्छी विधि यह है कि अपने नित्यकर्म की अतिरिक्त मात्रा वा हवनादि करके काम्यकर्म साधित कर लिए जाएँ।

शंय्या त्यागने से पूर्व पठनीय श्लोक

नारायण स्तुति

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्ये,
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम् ।

ग्राहाभिभूत वरवारण मुक्तिहेतुं,
चक्रायुधं तरुणवारिज पत्र नेत्रम् ॥१॥

प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना,
पादारविन्द युगुलं परमस्य पुंसः ।

नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य
पारायण प्रवण विप्र परायणस्य ॥२॥

प्रातर्भजामि भजतामभयंकरं तम्,
 प्राक् सर्वजन्मकृत पाप भयापहृत्यै
 यो ग्राहवक्त्र पतितांघ्रि गजेन्द्रघोर
 शोक प्रणाशन करो धृत शंखचक्रः ॥३॥

गणपति स्तुति

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथ बन्धुं, सिन्दूरपूर परिशोभित
 गण्डयुग्मम् उद्गण्डविघ्नपरिखण्डन चण्डदक्षम्, आखण्डलादि सुरनायक-
 वृन्दवन्द्यं प्रातर्नमामि चतुरानन वन्द्यमानमिच्छानुकूल मखिलं च वरं
 ददानम् तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः
 शिवाय प्रातर्भजाम्यभयदं खलू भक्त शोकदावानलं गणदिभुं वरकुंज-
 रास्यम् अज्ञान कानन विनाशन हव्यवाहमुत्साहवर्धन महं सुतमीश्वरस्या।

सूर्य स्तुति

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यम्,
 रूपं हि मण्डलमृचोथ तनुर्यजुषि ।
 सामानि यस्य किरणाः प्रभवादि हेतुम्,
 ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ॥१॥
 प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ् मनोभिः,
 ब्रह्मेन्द्रपूर्वक सुरैर्नुतमचितं च ।
 वृष्टि प्रमोचन विनिग्रह हेतुभूतं,
 त्रैलोक्य पालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥२॥
 प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं,
 पापौघशत्रुभयरोग हरं परं च ।
 तं सर्व लोक कलनात्मक कालमूर्ति,
 गोकण्ठ बन्धन विमोचनमादिदेवम् ॥३॥

देवीस्तुति

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभाम्,
 सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम् ।
 दिव्य, युधोजितमुनील सहस्रहस्ताम्,
 रक्तोत्पलाभचरणां भवती परेशाम् ॥१॥

प्रातर्नमामि महिषासुर चण्डमुण्ड
 शुभासुर प्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम् ।
 ब्रह्मेन्द्र रुद्र मुनि मोहन शील लीलाम्,
 चण्डो समस्त सुरमूर्तिमनेक रूपाम् ॥२॥
 प्रातर्भजामि भजतामभिलाष दात्रीं,
 धात्रीं समस्त जगतां दुरितापहन्त्रीम् ।
 संसार बन्धन विमोचन हेतुभूताम्,
 मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः ॥३॥

शिवस्तुति

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशम्
 गंगाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।
 खट्वांग शूल वरदाभयहस्तमीशं
 संसार रोगहर मौषध मद्धितीयम् ॥१॥
 प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहम्,
 सर्गस्थिति प्रलयकारण मादिदेवम् ।
 विश्वेश्वरं विजित विश्व मनोभिरामम्,
 संसार रोगहर मौषधमद्धितीयम् ॥२॥
 प्रातर्भजामि शिवमेक मनन्तमाद्यम्,
 वेदान्तवेद्य मखिलं पुरुषं महान्तम् ।
 नामादिभेदरहितं षडभाव शून्यम्,
 संसार रोगहर मौषध मद्धितीयम् ॥३॥

रामस्तुति

प्रातः स्मरामि रघुनाथ मुखारविन्दम्,
 मन्दस्मितं मधुरहासि विशालभालम् ।
 कर्णावलम्बिचल कुण्डल शोभिगण्डम्,
 कर्णान्त दीर्घं नयनं नयनाभिरामम् ॥१॥
 प्रातर्भजामि रघुनाथ करारविन्दम्,
 रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः ।
 यद्वाज संसदि विभज्य महेश चापं,
 सीता करग्रहण मंगलमाप सद्यः ॥२॥

प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दम्,
 वज्राङ्कुशादि शुभरेखि सुखावहं मे ।
 योगोन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं,
 शापापहं सपदि गौतम धर्मपत्न्याः ॥३॥
 प्रातर्बुद्धमि वचसा रघुनाथनाम,
 वाग्दोषहारि सकलं शमलं निहन्ति ।
 यत्पार्वती स्वपतिना सह मोक्षकामा,
 प्रीत्या सहस्र हरिनाम समं जजाप ॥४॥
 प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिम्,
 नीलाम्बुजोत्पलसितेतररत्ननीलाम् ।
 आमुक्त मौक्तिक विशेषविभूषणाद्याम्,
 ध्येयां समस्तमुनिभिर्जनमुक्ति हेतुम् ॥५॥

ग्रहस्तुति

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी, भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
 गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकराः भवन्तु ॥

स्फुट पद्य

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च, मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः ।
 रैभ्योमरीचिश्चयवनश्च दक्षः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
 सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोप्यासुरिपिंगलौ च ।
 सप्तस्वराः सप्तरसातलानि कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
 सप्तार्णवाः सप्तकुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त ।
 भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
 पृथिवी सगन्धा सरसास्तथापः स्पर्शी च वायुः ज्वलितं च तेजः ।
 नभः सशब्दं महता सहैव कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥
 पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ।
 पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः ॥
 अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमाश्च विभीषणः ।
 कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥

सप्तैतान्संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेय मथाष्टमम् ।
 जीवेद्वर्षशतं सोपि सर्वव्याधि विवर्जितः ॥
 अहल्या द्रौपदी सीता तारा मन्दोदरी तथा ।
 पंचकं ना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥
 अविमुक्त चरणयुगलं दक्षिणमूर्तेश्च कुक्कुटचतुष्कम् ।
 स्मरणमपि वाराणस्याः निहन्ति दुःस्वप्नमशकुनं च ॥
 उमा उषा च वैदेही रमा गङ्गेति पंचकम् ।
 प्रातरेव पठेन्नित्यं सौभाग्यंवर्धते सदा ॥
 सोमनाथो वैजनाथो धन्वन्तरिरथाश्विनौ ।
 पंचैतान्यः स्मरेन्नित्यं व्याधिस्तस्य न बाधते ॥
 कपिलः कालियोनन्तो वासुकिस्तक्षकस्तथा ।
 पंचैतान्स्मरतो नित्यं विषबाधा न बाधते ॥
 हरं हरिं हरिश्चन्द्रं हनुमन्तं हलायुधम् ।
 पंचकं ना स्मरेन्नित्यं घोरसंकटनाशनम् ॥
 रामं स्कन्दं हनुमन्तं वैनतेयं वृकोदरम् ।
 पंचैतान्संस्मरेन्नित्यं भवबाधा विनश्यति ॥
 आदित्यश्च उपेन्द्रश्च चक्रपाणिर्महेश्वरः ।
 दण्डपाणिः प्रतापीस्या तक्षुब्धाधा न बाधते ॥
 वसुर्वरुणसोमौ च सरस्वती च सागरः ।
 पंचैतान्संस्मरेद् यत्र तृषा तत्र न बाधते ॥
 सनत्कुमार देवर्षिशुक भीष्मप्लवंगमाः ।
 पंचैतान्स्मरतो नित्यं कामस्तस्य न बाधते ॥
 रामलक्ष्मणौ सीता च सुग्रीवो हनुमान्कपिः ।
 पंचैतान्स्मरतो नित्यं भवबाधा प्रमुच्यते ॥
 कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्याः नलस्य च ।
 ऋतुपर्णस्य राजर्षे कोर्तनं कलिनाशनम् ॥
 कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजाबाहु सहस्रवान् ।
 तस्य स्मरणमात्रेण गतं नष्टं च लभ्यते ॥
 प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक-
 व्यासाम्बरीष शुक शौनक भीष्म दातृभ्यान् ।
 रुक्मांगदार्जुनवसिष्ठ विभीषणादीन्
 पुण्यानिमान्परम भागवतान्तमामि ॥

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिर कीर्तनेन,
 पापं प्रणश्यति वृकोदर कीर्तनेन ।
 शत्रुर्विनश्यति धनंजयकीर्तनेन,
 माद्री सुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः ॥
 काश्यां वै भैरवो देवः संसारभयनाशनः ।
 अनेकजन्मजं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥
 वाराणस्यां पूर्वभागे व्यासो नारायणः स्वयम् ।
 तस्य स्मरणमात्रेण अज्ञानी ज्ञानवान् भवेत् ॥
 वाराणस्यां परे भागे भीमचण्डी महासती ।
 तस्याः स्मरणमात्रेण जयी भवति सर्वदा ॥
 वाराणस्यामुत्तरे तु सुमन्तो नाम वै द्विजः ।
 तस्य स्मरणमात्रेण निर्धनो धनवान्भवेत् ॥
 वाराणस्यां दक्षिणे तु कुक्कुटो नाम वै द्विजः ।
 तस्य स्मरणमात्रेण दुःस्वप्नः सुखदो भवेत् ॥
 विश्वेशं माधवं धुण्डि दण्डपाणिं च भैरवं ।
 वन्दे काशीं गुहां गंगां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥

कामना

हे जिह्वे रससारज्ञे, सर्वदा मधुरप्रिये ।
 नारायणाख्य पीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम् ॥
 त्रैलोक्य चैतन्य मयाद्यदेव, श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयेव ।
 प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥
 सुप्तः प्रबोधितो विष्णो हृषीकेशेन यत्त्वया ।
 यद्यत्कारयसे कर्म तत्करोमि त्वदाज्ञया ॥
 त्रैलोक्य चैतन्य मयादिदेव श्रीशंकर त्वच्चरणाज्ञया च ।
 प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसार यात्रामनुवर्तयिष्ये ॥
 संसारयात्रामनुवर्तमानं त्वदाज्ञया शंकर देवदेव ।
 स्पर्धा तिरस्कार कलिप्रमाद भयानि मां माभिभवन्तु नाथ ॥

षट्कर्म का सामान्य विधि-विधान

शान्ति कर्म

जब व्यक्ति शत्रुकृत विपत्तियों अथवा ग्रहजनित कष्टों से ग्रस्त हो जाता है तो शान्ति कर्म किया जाता है, इसमें चावल या सफेद रंग के अन्य पदार्थ से चौकोर मण्डल बनाकर सफेद चन्दन से रात की पूजा करें। पूजा के लिए 'वं' बीज व्यवहार में आता है। शान्तिकर प्रयोगों में उत्तर की ओर मुख करके बैठा जाता है, पद्मासन लगाकर शान्ति कर्म के लिए उपदिष्ट मन्त्र का जप करना होता है तथा मन्त्र के अन्त में नमः का प्रयोग होता है। आसन कुशा का होता है तथा हवन मृगी मुद्रा से करना होता है। मृगी मुद्रा में कनिष्ठा अंगुलि को अलग रखकर शेष तीन अंगुलियों और अंगूठे से आहुति दी जाती है।

वशीकरण

वशीकरण का अर्थ होता है, अपने अधीन करना। देवता, राक्षस, राजा, सर्प, स्त्री, घोड़ा, हाथी जैसे प्राणियों का वशीकरण सामयिक आवश्यकता होती है।

समय—वशीकरण वसन्त ऋतु में किया जाता है। दिन के प्रथम भाग (प्रातः काल) में यह ऋतु नित्य वर्तमान रहती हैं।

मण्डल—लाल रंग के किसी पदार्थ से त्रिकोण मण्डल बना 'रं' बीज से पूजा की जाती है, त्रिकोण में अथवा घड़े में वाणी का पूजन करते हैं।

आसन—आसन के लिए बकरे की चर्म और बैठने में स्वस्तिकासन उपयुक्त रहता है।

वशीकरण के मन्त्रों के अन्त में स्वाहा का प्रयोग होता है। लाल

पुष्प और अन्य लाल पदार्थों का हवन किया जाता है। ध्यान भी लाल रंग के वस्त्र पहने हुए रक्त कमल पर आसीन देवी का किया जाता है।

मृगशिरा, रेवती, चित्रा, विशारखा, कृतिका और मित्र नक्षत्र में वशीकरण करना श्रेष्ठ फल देता है।

स्तंभन

स्तंभन अर्थात् रोक देना। किसी भी व्यक्ति की क्रियाओं को रोक देना ही स्तंभन कहलाता है। फैलती हुई आग, पानी का सैलाब, हिंसक जन्तु, सर्प, शत्रु आदि का स्तंभन करना हमारे लिए कभी-कभी आवश्यक हो जाता है, एतदर्थ स्तंभन किया जाता है।

समय—स्तंभन कर्म में दिन का छठा भाग—सूर्योदय से पहले वर्तमान शिशिर काल अथवा शिशिर ऋतु प्रशस्त रहती है।

मण्डल—हल्दी का चूर्ण अथवा पीले रंग के पदार्थ से आठ कोण का मण्डल बनाकर उसमें 'लं' बीज से वसुन्धरा का पूजन किया जाता है। इसकी आधार शक्ति वसुन्धरा और क्रियावती शक्ति के रूप में रमादेवी है इसका ध्यान भी पीताम्बरधारिणी, सुवर्णसिंहासन पर विराजित के रूप में किया जाए।

आसन—गजचर्म का होता है।

मन्त्र के अन्त में वषट् का प्रयोग किया जाता है। साधक पीले वस्त्र पहनकर पीले पदार्थों का हवन करता है।

नक्षत्र—भरणी, रोहिणी, चित्रा और तीनों उत्तरा ग्राह्य हैं। मुखःपूर्व की तरफ करना होता है।

विद्वेषण

नीतिशास्त्र में जिसे भेदनीति कहा गया है वही पट्कर्म में विद्वेषण कहलाता है। शत्रुओं में अथवा हमारे कार्यों में जहाँ दो या अनेक जन मिलकर बाधा डाल रहे हैं उनमें परस्पर द्वेष कराने को विद्वेषण कहा जाता है। यह प्रकृति का सहज कर्म है। सर्प और मोर, सर्प और नकुल, सिंह और मृग में सहज द्वेष होता है किन्तु यह विद्वेषण वहाँ किया जाता है जहाँ स्नेह-सौहार्द्र भाव हो। सिद्ध होने पर इस प्रयोग से पति-पत्नी, पिता-पुत्र एवं घनिष्ठ मित्रों में भी वैरभाव कर दिया जाता है।

समय—ग्रीष्म ऋतु में अथवा दोपहर में जब नित्य रूप में ग्रीष्म-काल रहता है, यह कर्म किया जाता है।

मण्डल—धूँये के रंग के पदार्थों से गोलाकार मण्डल बनाकर 'खं' बीज से धूमावती की पूजा की जाती है। पूज्य देवी के रूप में ज्येष्ठा की स्थापना करनी होती है।

आसन—गीदड़ का चर्म अथवा लोहे का तख्ता माना गया है।

मन्त्र के अन्त में 'फट्' का प्रयोग होता है। साधना करते समय साधक धूँये के रंग के वस्त्र पहने तथा हवन में भी इसी प्रकार के काष्ठ व पदार्थ होंगे। आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मूल और ज्येष्ठा नक्षत्र ग्राह्य हैं। साधना करते समय दक्षिण दिशा में मुख करना चाहिए।

उच्चाटन

उच्चाटन का अर्थ होता है, भगा देना, अथवा वहाँ से उखाड़ देना। परिस्थितिबश उच्चाटन करना भी आवश्यक हो जाता है।

समय—वर्षाकाल में अर्थात् श्रावण-भाद्रपद मास में उच्चाटन कर्म किया जाता है। तीसरे पहर—संध्या में यह वर्षाकाल नित्य माना जाता है।

मण्डल—छ कोण का वायुमण्डल काले रंग के पदार्थों से बनाकर 'यं' बीज से पूजा करे। पूज्य देवी के रूप में दुर्गादेवी का पूजन करना चाहिए।

आसन—मृग चर्म का हो और मुख वायव्य दिशा में हो।

मन्त्र के अन्त में फट् का प्रयोग करे।

मारण

मारण का अर्थ हम जानते ही हैं। स्त्रियों, बालकों और ब्राह्मणों पर यह कर्म नहीं करना चाहिए। अपना अहित करने वाले, राजद्वेषी तथा गुरुतरवर्ग की रक्षा के लिए मारण कर्म किया जा सकता है किन्तु रौद्रकर्म होने के कारण इसे करने के बाद प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिए प्रायश्चित्त के लिए दस हजार जप करना होता है और इतनी ही मात्रा में हवन भी करना पड़ता है। इसके साथ ही साधक को आत्मरक्षा भी करनी चाहिए।

समय—मारण कर्म के लिए शरद् ऋतु उत्तम रहती है। रात्रि का प्रथम प्रहर अथवा अर्धरात्रि इसका दैनिक काल है।

पूजा के लिए लाल रंग के किसी पदार्थ से तिकोना मण्डल बनाकर 'रं' बीज से पूजा करे। इसकी पूज्य देवी है—भद्रकाली।

आसन—भैंस के चमड़े अथवा लोहे के तख्ते का होना चाहिए। मुख दक्षिण दिशा में और मन्त्र के अन्त में 'हुम्' का प्रयोग करना चाहिए।

साधक स्वयं भी काले रंग के वस्त्रादि पहने रहे तो उत्तम फल प्राप्त होता है। हवन में काले रंग के पदार्थ होने चाहिए। नक्षत्र तोनों पूर्वा, भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल और ज्येष्ठा ग्राह्य हैं। मारण कर्म में ज्योतिष की दृष्टि से एक विचार और कर लेना चाहिए कि जिस समय वध्य व्यक्ति की स्थिति आकाशीय ग्रह-नक्षत्रों के अनुसार कमजोर और साधक की सबल चल रही हो उस समय यह कर्म करना उचित रहता है। जिनके पास यह मन्त्र सिद्ध है, उनके लिए इस प्रकार का विचार आवश्यक नहीं है।

ज्ञातव्य—इन षट्कर्मों के विषय में पूर्वकरणीय तथा अन्य आवश्यक बातें जान लेनी चाहिए। ऊपर वाले विवरण में जहाँ मन्त्र के अन्त में—फट्, वषट् आदि जोड़ने को कहा गया है वह विधान केवल हवन करते समय मन्त्र के अन्त में स्वाहा के स्थान पर बोलने के लिए है।

मोहन-वशीकरणादि कर्मों के लिए अनेक मन्त्र हैं किन्तु ये पूजन तथा इनसे सम्बद्ध शक्ति रूपों की पूजा एवं जप पहले कर लेने का शास्त्रीय निर्देश है। मूलतः वाणी, रमा, ज्येष्ठा आदि देवियाँ इन कर्मों की अधिष्ठात्री हैं, ये कर्म इनके ही अधिकार का विषय हैं, भले ही इनके लिए किसी भी अन्य मन्त्र का उपदेश दे दिया गया हो। साधक को चाहिए कि वह मूल मन्त्र की साधना करने से पूर्व इन देवताओं का पूजन कर ले और इनके मन्त्र का जप एवं हवन कर ले। इन देवताओं का पूजन जप आदि करने पर ही अभिष्ट फल प्राप्त हो सकता है कदाचित् ऐसा न भी हो तो आगे किये जाने वाले कर्म में सफलता मिलने की सम्भावना बढ़ जाती है।

जप-पूजा आदि करने में निद्रा, आलस्य, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि विघ्न माने जाते हैं और साधना करने वाले के समक्ष ये किसी न

किसी रूप में आते ही हैं यह दूसरी बात है कि हम इनको पहचान नहीं पाते। ये विघ्न सीधे मन में आते हैं और जप व आराधना मन से की जाती है इसलिए ये विघ्न कार्य विघातक हैं, सतर्क दृष्टि और निरन्तर इन पर नियन्त्रण रखने से ये बाधा नहीं पहुँचाते। श्रद्धा और निष्ठा के बल के समक्ष भी ये विघ्न नहीं ठहर पाते।

शावर तन्त्र में जो सम्मान गोरखनाथ को प्राप्त है और जो उपकार उन्होंने किया है वही सम्मान दत्तात्रेय भगवान् को है। इनकी तपस्या और उच्चता का उल्लेख वैष्णव दर्शन के ग्रन्थों और पुराणों में भी किया गया है। अपनी तपस्या के कारण ये सर्वत्र पूजित हैं। उज्जैन में दत्त अखाड़े के नाम से इनकी गद्दी है जिसे दत्तपीर के नाम से मुस्लिम समुदाय भी मानता है। परम सिद्ध, तत्त्वज्ञ एवं ऋषिपद प्राप्त दत्तात्रेय ने अपने दिव्य ज्ञान के आधार पर लोक कल्याण के लिए ही षट्कर्म साधन के लिए विविध प्रयोगों का संकलन किया है। इन प्रयोगों में मन्त्र के और औषधि वा अन्य पदार्थों के संयोजन से होने वाले प्रयोग भी हैं। आगे दत्तात्रेय भगवान् के द्वारा उपदिष्ट प्रयोग उद्धृत किये जा रहे हैं। दत्तात्रेयी सम्प्रदाय के लोगों का कहना है कि तन्त्र साधना करने के लिए—

“ओं परब्रह्म परमात्मने नमः उत्पत्तिस्थितिप्रलय कराय ब्रह्म-
हरिहराय त्रिगुणात्मने सर्वकौतुकानि दर्शय दर्शय दत्तात्रेयाय नमः सिद्धि
कुरु कुरु स्वाहा”

इस मन्त्र के दस हजार जप कर लेने चाहिए। इस प्रकार के जप से आगे चलकर जो भी प्रयोग किये जाएँगे उनमें सिद्धि मिल जाती है। साधक का मन श्रद्धा पूरित हो और इस मन्त्र की साधना उत्तम प्रकार से कर ली जाए तो इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके कोई भी प्रयोग किया जाए तो वह सफल रहता है। भले ही वह साधक की स्वयं की कल्पना से ही किया जाए।

मेरा व्यक्तिगत और अनुभव सिद्ध विश्वास है कि साधना का उत्कृष्ट स्तर प्राप्त होने पर व्यक्ति अपने मन से कल्पित विधि से ही कोई काम कर सकता है। जिस विधि का शास्त्र में उल्लेख नहीं है वैसी नई विधि भी वह काम में ले सकता है। अपने मन्त्र की शक्ति से वह जो चाहे वह काम कर सकता है। वास्तव में होता यह है कि साधना करने

से व्यक्ति का मन निर्मल हो जाता है निर्मल मन अनर्गल कामना-कल्पना से मुक्त हो जाता है, ऐसी स्थिति में वह जो कुछ सोचता है, वह देवी प्रेरणा मानी जाती है और उस प्रेरणा का शास्त्रीय आधार भी रहा ही करता है, यह दूसरी बात है कि वह व्यवस्था हमारे देखने में आई है या नहीं ?

पट्कर्म का प्रारम्भ मारण से होता है पर हम इस विषय को अभी छोड़ देते हैं क्योंकि सबसे बड़ी बात यह है कि यह उग्र व पापकर्म है। इस कर्म को यहाँ के कानून के अनुसार सिद्ध नहीं किया जा सकता किन्तु उस अदृश्य संसार के कानून में वह स्वतः प्रमाणित है अतः उसका फल भी भोगना पड़ता है। दूसरी बात यह कि उग्र प्रयोग रहने के कारण इसमें गलती हो जाने से यह कर्त्ता को ही क्षति पहुँचा सकता है।

दत्त भगवान् ने सम्मोहन के लिए जो प्रयोग बताये हैं वे मान्त्रिक न होकर पदार्थगत हैं। ये तिलक, कज्जल, लेप एवं खाने के हैं। सम्मोहन यशःप्रद होता है। कोई भी व्यक्ति किसी व्यक्ति को अथवा समुदाय को मुग्ध कर लेता है तो वे उसका गुणानुवाद करने लगते हैं। भगवान् राम में सम्मोहनकारिणी शक्ति प्रबल रूप से थी इसलिए सारी प्रजा ही नहीं वीतराग ऋषि भी उन पर मुग्ध थे। भगवान् कृष्ण में आकर्षण शक्ति प्रचण्ड थी इसीलिए गोपियाँ सारी कुलमर्यादा और सामाजिक परम्परा को भूलकर उनके पास खिंची चली आती थी।

सम्मोहन कर प्रयोगों में तिलक, कज्जल के अलावा भी अनेक विधियाँ प्रचलित रही हैं जिनमें साध्य के नाम से साधक का अपना मुँह धोना, उसे खान-पान में कोई चीज देना, मन्त्र का अनुष्ठान आदि अनेक प्रकार आते हैं। ये प्रयोग वहाँ भी काम आ सकते हैं जहाँ किसी व्यक्ति से हमारा व्यवसायिक कार्य हो, किसी जगह साक्षात्कार करने जाना हो, किसी लड़की का विवाह होने के लिए वर पक्ष को दिखलाना हो।

इसका रहस्य विश्लेषण करना अत्यन्त कठिन है कि एक प्रयोग चार जगह सफल रहा किन्तु पाँचवी जगह वह विफल हो गया अथवा एक प्रयोग चार जगह विफल होने के बाद पाँचवी जगह सफल हो गया। इसके बावजूद यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि यह शास्त्र सत्य है। प्रयोगों के असफल होने के अनेक कारण हो सकते हैं। यहाँ जो प्रयोग दिए हैं उनमें किसी अन्य सावधानी का निर्देश नहीं है फिर भी जिस कर्म

के लिए जो दिन, वार, तिथि बताई गई है उसका ध्यान रखा जाए। किसी वृक्षादि का प्रयोग करना है तो यह ध्यान रखा जाए कि वह श्मशान, देवालय, मार्ग, बिलों वाली भूमि अथवा अन्य अशुद्ध स्थान में उगा हुआ न हो। दूसरी बात यह भी ध्यान में रखी जाय कि जिस पौधे का उल्लेख किया गया है, वह वही हो, उसके जैसा दूसरा कोई न हो। इन प्रयोगों को सुनिश्चित फल देने वाला करने के लिये सम्बद्ध देवताओं का मन्त्र जप कर लिया जाय तो और उत्तम रहे।

सम्मोहन कर तिलक

१. तुलसी के बीजों को सहदेई के रस में घिसकर रविवार को तिलक करने से मोहित करता है।
२. हरताल, असगंध और गौरोचन को केले के रस में घिसकर तिलक करने से लोकमोहन कर सकता है।
३. नागरपान की जड़ को पानी से पीसकर तिलक लगाने से देखने वाले मोहित हो जाते हैं।
४. सिन्दूर, केशर और गौरोचन को आमले के रस में पीसकर तिलक करने से देखने वाले मोहित हो जाते हैं।
५. भैरवसिल और कपूर केले के रस में पीसकर लगाए गए तिलक को देखने से लोग मोहित होते हैं।
६. सिन्दूर, सफेद वच को पान के रस से पीस दत्तात्रेय मन्त्र से अभिमन्त्रित कर तिलक लगाने से मोहित करता है।
७. भंगरा, अपामार्ग, सिके चावल (जिनको लाजा या खील कहते हैं) और सहदेई को पानी से घिसकर तिलक करने से व्यक्ति सभी को मोहित कर सकता है।
८. सफेद दूब और हरताल को पीसकर तिलक करने से लोगों को मोहित कर लेता है।

कज्जल

१. गूलर के फूल लेकर उतकी बत्ती बना लौनी घी में कज्जल उपाड़े, यह कज्जल लगाकर जिसे देखे वह मुग्ध हो जाए।

२. कड़वी तुम्बी के बीज के तेल में कपड़े की बत्ती बनाकर बनाए गए काजल को आंजकर जिससे आँख मिलाए वही मोहित हो जाए।

अनुलेप

१. ब्रह्मदण्डी की जड़ को सफेद गुंजा के रस में पीसकर लेप करने से जन मोहन होता है।
२. सफेद आक की जड़ और सफेद चन्दन को घिसकर शरीर पर लेप करने से मोहित करता है।
३. विजया के पत्तों को सफेद सरसों के साथ पीसकर लेप करने से सम्मोहन होता है।

स्तंभन

स्तंभन का अर्थ है रोकना। मूलतः यह तमोगुण का कर्म है सांख्यदर्शन तमोगुण को ही गुरु और आवरण मानता है किन्तु शुद्ध तमोगुण विखण्डन अतएव उत्क्रान्ति उत्पन्न करता है उसकी आवरकता (वरणक गुण) अत्यन्त सघन होकर औरों से सम्बन्ध जोड़ने वाली स्निधनता को क्षीण कर देती है किन्तु तम और सत्व के साहचर्य से स्तंभन होता है। इसमें पीताम्बरा-बगलामुखी का प्रयोग बहुत उपयोगी रहता है। साधारण स्तर पर यह वैरियों की बुद्धि का और वचन का स्तंभन करता है किन्तु अधिक उग्र होने पर इससे सभी तरह के स्तंभन सम्भव हो जाते हैं।

सभी प्रयोगों के सामान्य, उत्कृष्ट और दिव्य स्तर होते हैं। स्तंभन का भी दिव्य स्तर प्राप्त कर लेने पर सभी कुछ किया जा सकता है। सभी कुछ से तात्पर्य यह कि रजोगुण की वृत्ति का निरोध किया जा सकता है। यहाँ अन्य प्रकार के स्तंभन कर प्रयोगों की अपेक्षा गर्भ स्तंभन के तन्त्र सिद्ध प्रयोग दे रहे हैं। गर्भ स्तंभन का अर्थ होता है जिन स्त्रियों के गर्भस्त्राव की स्थिति बन जाती है अथवा जिनको गर्भपात की शिकायत रहती है।

१. रविवार पुष्य नक्षत्र के दिन काले धतूरे की जड़ लेकर कमर में बांधने से गर्भस्त्राव नहीं होता।

२. चौलाई की (जिसके चावल जैसे फूल आते हैं) जड़ को चावल के पानी से पीने से गर्भ स्तंभन होता है।
३. धतूरे की जड़ का चूर्ण योनि में रखने से गर्भ नहीं गिरता।
४. केशर, मिश्री, पाठा और कुन्द को शहद के साथ खाने से गर्भ नहीं गिरता।
५. बर्तन बनाते समय कुम्हार के हाथ से झर रही मिट्टी को शहद और बकरी के दूध से पीने से गर्भ नहीं गिरता।

इन सारे प्रयोगों को करते समय “ओं नमो भगवते महारौद्राय गर्भ स्तंभनं कुरु कुरु स्वाहा” इस मन्त्र का दस हजार जप कर ले तो ये प्रयोग अवश्य फलदायी होते हैं—यह दत्तात्रेय का है। वैसे ऊपर लिखे मन्त्र का एक लाख जप करने से वह सिद्ध होता है और इसके सिद्ध होने पर एक सौ आठ बार जप कर अभिमन्त्रित जल पिलाने मात्र से गर्भ-स्तंभन हो जाता है।

मनः स्तंभन

१. चमार और धोबी की नांद का मैल लेकर चाण्डाली का ऋतु वस्त्र लेकर इसकी पोटली में उपर्युक्त मैल बांधकर जिस किसी के सामने रखे उसका स्तंभन हो जाएगा।
२. भंगरा, अपामार्ग, सरसों, सहदेई इन सबके बराबर वच और सफेद कटेली को लेकर इन्हें लोहे के बर्तन में रखकर रस निकाल ले। इसका तिलक करने से सब भूतों की बुद्धि स्तंभित हो जाती है—ऐसा नित्यनाथ ने कहा है।

‘ओं नमो भगवते विश्वामित्राय नमः सर्वमुखीभ्यां विश्वामित्राय विश्वामित्र आज्ञापयति शक्त्या आगच्छ आगच्छ स्वाहा’

इस मन्त्र का पहले दस हजार जप कर ले अथवा यथाशक्ति जप करके इन प्रयोगों को करते समय भी जप करता रहे तो उनकी सफलता अधिक सम्भावित हो जाती है।

वीर्य स्तंभन

जिन लोगों के शीघ्रपतन का रोग है उनके लिए ये योग उपयोगी

हैं। वैसे समागम सुख के लिए भी इनका प्रयोग किया जाता है। आज-कल यौन चिकित्सकों की चाँदी हो रही है। नशोले अथवा उत्तेजक औषधियाँ देकर व्यक्ति को क्षणिक चमत्कार से वशीभूत करके मनमाने दाम वसूलने का एक फैशन चल पड़ा है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि शरीर में संचित पदार्थ ही स्थलित होगा। प्रकृति ने उसे स्थलित करने में ढिलाई दिखाई है तो उसका भी कारण होगा—इस प्रकार की ऐलोपैथी अथवा उत्तेजक दवाओं के मोह में पड़ने की अपेक्षा तन और मन को स्वस्थ बनाने पर ध्यान देना चाहिए, इससे बाद यदि कोई कमी रहे तो उसे रोग समझकर चिकित्सा करनी चाहिए।

ये औषधियाँ हमारे कोश को खोने जैसा आपाततः सुख देती हैं। जिसका परिणाम होता है कि व्यक्ति आगे चलकर तन से जर्जर और आत्यन्तिक रूप से नपुंसक हो जाएगा। आयुर्वेद ने जीवनीय, वृष्य, वाजीकरण आदि औषधियाँ बताई हैं। वृष्य औषधियाँ वीर्य को बढ़ाती हैं फिर स्तंभन करती हैं। ऐसी स्थिति में हमारे देह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि पहले वीर्य वृद्धि होगी फिर उसका स्तंभन होगा। इन प्रयोगों का संकलन करते समय यह ध्यान रखा गया है कि इनसे व्यक्ति के स्वास्थ्य पर कोई घातक-गम्भीर प्रभाव न पड़े।

१. नाग केशर एक तोला घी में डालकर सेवन करने से वीर्य स्तंभन होता है।
२. रविवार के दिन सप्तपर्ण वृक्ष के बीज लावे और रति के समय इनको मुख में रखे तो शीघ्र स्थलित नहीं होता।
३. श्वेत कोकिला नामक वृक्ष के फल लेकर उन्हें बड़ के दूध में पीसे उसमें करंज के बीज का बीज का हिस्सा मिला ले। इसे सम्भोग के समय मुख में रखने से वीर्य स्थलित नहीं होता।
४. काला धतूरा और वच की जड़ शहद में पीसकर कामध्वज पर लेप करे। इसके पश्चात् स्त्री समागम करने से वीर्य स्तंभित होता है। इसके अलावा स्त्री को भी अवाच्य सुख प्राप्त होता है। ऐसा सुख किसी और से प्राप्त हो नहीं सकता इसलिए यह स्त्री वशीकरण भी माना जाता है।

५. मस्त हुए बकरे के मूत्र में जटामांसी पीसकर इसका लेप करने से भी बीर्य स्थलित नहीं होता।
६. नागार्जुन ने कहा है—कपूर, सुहागा और पारा समान भाग ले इनको लिंग पर लेप कर एक पहर रखे फिर धोकर समागम करे।

उच्चाटन

शास्त्र कहता है—जिसने घर, खेत, स्त्री, पुत्रादि का हरण किया है, उसका उच्चाटन करना चाहिए। अनावश्यक रूप से निरपराध व्यक्ति को सताने वाले का उच्चाटन और मारण करने का निर्देश यद्यपि हमारी व्यावहारिक एवं सामयिक आवश्यकता का समाधान है फिर भी ये प्रयोग उग्र हैं और इनके करने से व्यक्ति कर्म और प्रतिकर्म के चक्र में फँस जाता है इसलिए अतिशय विषमता की स्थिति में ही इनको किया जाए।

एक मिट्टी का शिर्वालिंग बनाकर उस पर ब्रह्मदण्डी तथा चिता की भस्म का लेप कर दे। इसे सरसों के साथ जिस किसी भी व्यक्ति के घर में रख दिया जाएगा उसका उच्चाटन हो जाएगा।

शिर्वालिंग पर “ओम् नमो भगवते रुद्राय करालाय...पुत्र बांधवै सह शीघ्रमुच्चाटय उच्चाटय स्वाहा ठः ठः ठः”—खाली स्थान में उस व्यक्ति का नाम लिया जाए जिस पर यह प्रयोग करना है। इस मन्त्र का एक हजार जप कर लेना चाहिए।

उच्चाटन के जो प्रयोग किए गए हैं उनमें इसी मन्त्र का प्रयोग होगा इसलिए सर्वप्रथम किसी शिव मन्दिर में जाकर उपरिलिखित मन्त्र के दस हजार जप कर लेने चाहिए। इससे मन्त्र जाग्रत एवं शक्ति सम्पन्न होता है।

मंगलवार के दिन मध्याह्न में गधालोटन की मिट्टी लाकर उस पर ऊपर लिखा मन्त्र एक सौ आठ बार पढ़कर जिसके घर में डाल दे उसका उच्चाटन हो।

सरसों और शिव निर्माल्य जिसके घर में गाड़ दिया जाए उसका उच्चाटन हो जाता है। उपर्युक्त मन्त्र का ही जप करना होगा।

रविवार के दिन कौवे के पंख अभिमन्त्रित करके जिसके घर में डाला जाए उसका उच्चाटन हो जाता है।

मंगलवार के दिन ऊपर लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उल्लू के पंख जिसके घर में डाले जाते हैं उसका उच्चाटन हो जाता है।

उल्लू की विष्ठा और सरसों को अभिमन्त्रित करके जिसके शरीर पर डाला जाए उसका उच्चाटन हो जाता है। यहाँ उच्चाटन का अर्थ होता है, वह व्यक्ति किसी भी स्थान पर स्थिर नहीं हो पाता है।

चार अंगुल की गूलर की कील अभिमन्त्रित करके जिसके द्वार पर गाड़ दी जाए उसका उच्चाटन हो जाता है।

कौवे और उल्लू के पंखों को ऊपर लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित करके रविवार के दिन जिसके चूल्हे में गाड़ दिया जाए उसका उच्चाटन हो जाता है। आज के गैस युग में यह और भी सरल हो गया है क्योंकि इन अभिमन्त्रित पंखों को गैस के स्टोव के नीचे चिपका देने से भी अपेक्षित परिणाम निकल आने चाहिए।

विद्वेषण

चतुरंगिणी राजनीति में जिसे भेदनीति कहा गया है वही तन्त्र शास्त्र में विद्वेषण कहलाता है। जीवन में अनेक ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जिनमें विद्वेषण एक अति सार्थक एवं साधक आधार बन जाता है। जो संयोग एवं मैत्री हमारे लिए संकट का कारण बनते हैं उन्हें विखण्डित करने के लिए विद्वेषण का प्रयोग करना ठीक रहता है। किन्हीं व्यक्तियों के स्नेह-सम्बन्धों से ईर्ष्या ग्रस्त होकर कुछ इसी प्रकार के कार्य करने से व्यक्ति पापभागी होता है। सारा शास्त्र हमारी रक्षा करने का विधान बताता है, अहंकार, लोभ या ईर्ष्या से प्रेरित होकर किसी को सताने की सलाह नहीं देता इसलिए इन अभिचार कर्मों को केवल आत्मरक्षा के निमित्त ही किया जाना चाहिए।

आगे जो प्रयोग दिए जाएँगे उनको करने से पहले—“ओं नार-दाय अमुकस्य अमुकेन सह विद्वेषं कुरु कुरु स्वाहा” खाली स्थान पर उन दोनों का नाम लिया जाएगा जैसे श्यामस्य सुरेशेन पुरश्चरण करते समय यदि किसी व्यक्ति विशेष का लक्ष्य हो तो उनका नाम लेते हुए मन्त्र जप करना चाहिए अन्यथा अमुकस्य अमुकेन बोलकर ही कर लेना चाहिए।

हाथी के और सिंह के बाल लेकर जिनके बीच विद्वेषण कराना

हो उनके बाँये पैर की मिट्टी लेकर इन तीनों वस्तुओं को जमीन में गाड़ दे तथा इस स्थान पर आग जलाकर ऊपर लिखे मन्त्र से मालती के फूलों का हवन करें।

बिल्ली और चहे की विष्ठा तथा अभीष्ट व्यक्तियों के बाँये पैर की मिट्टी लेकर एक पुतला मन्त्र जप करते हुए बनाये, पुतला बनाकर उसको सामने रखकर एक माला मन्त्र जप करे। फिर इस पुतले को नीले कपड़े से ढाँपकर एक के घर में गाड़ दें।

नेवले और सर्प के दान्तों का चूर्ण करके दो अलग-अलग पुतली बनावे। चिता की राख लाकर एक में सर्प के दांत का चूर्ण मिलाकर पुतली बनावे तथा दूसरे में नेवले के दांत का चूर्ण मिलाकर पुतली बनावे इन्हें जिन व्यक्तियों में विद्वेषण कराना हो उनके नाम से अभिमन्त्रित करके बगीचे में ले जाकर गाड़ दे।

हाथी और सिंह के दांतों को मक्खन में पीसकर जिनके नामों से ऊपर लिखे मन्त्र से हवन किया जाए उनमें विद्वेषण हो।

वशीकरण

अपामार्ग की जड़ कपिला गाय के दूध में घिसकर तिलक करने से देखने वाला वश में हो जाता है।

गौरोचन और सहदेई को जल में घिसकर तिलक करने से सर्व-प्रिय होता है।

सफेद गुंजा को विधिवत् लाकर छाँह में सुखावे इसे कपिला गाय के दूध में घिसकर तिलक करे।

रवि पुष्य के योग में सफेद आक लाकर उसे छाँह में सुखा लें। कपिला गाय के दूध में घिसकर तिलक लगावे तो देखने वाले वशीभूत हो जाते हैं।

गौरोचन, लाल कमल के पत्ते, मालकांगनी, लाल चन्दन इनको पानी में घिसकर तिलक करने से देखने वाले वश में हो जाते हैं।

केसर, सोंठ, कूठ, हरताल और मैनसिल में अनामिका अंगुली का रक्त मिलाकर तिलक करने से देखने वाला व्यक्ति वशीभूत हो जाता है।

केसर, कपूर और गौरोचन का तिलक करने से स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं।

चिता की राख, गौरोचन, केसर, वच और कूठ ये सब समान भाग लेकर इनका चूर्ण करे। यह चूर्ण जिस स्त्री के सिर पर डाला जाएगा वह वशीभूत होगी।

पति वशीकरण के लिए—“ओं नमो महायक्षिण्यै मम पति वश्यं कुरु कुरु स्वाहा” इस मन्त्र का एक लाख जप करें।

राज वशीकरण के लिए—“ओं नमो भास्कराय त्रिलोकात्मनेअधिकारिणं मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा” इस मन्त्र का जप करना चाहिए। खाली स्थान पर उस अधिकारी का नाम लिया जाए। यह अनेक बार किया हुआ प्रयोग है तथा प्रायः इसके परिणाम अनुकूल ही प्राप्त हुए हैं।

□

प्रेत-साधना

गीता में भगवान् वेदव्यास श्रीकृष्ण के मुख से कहलवाते हैं कि प्रेत-पिशाचादि की साधना, निकृष्ट देवों की उपासना करने से व्यक्ति का कल्याण नहीं होता । व्यक्तिगत रूप में भी मैं इस प्रकार के प्रयोगों और इनके चमत्कारों से घृणा करता हूँ कारण कि ये हमारा श्रेय साधन नहीं करते, न ही इन पर बहुत विश्वास किया जा सकता है । वास्तव में ये प्रकृति के विकृत स्तर हैं । जिस प्रकार हमारे देह में कई अंग ऐसे हैं जिनमें कीट-सर्प पड़े रहते हैं, इन सारे बीभत्स तत्त्वों की हमारे देह की समग्रता के लिए आवश्यकता होती है वैसे ही विश्व प्रकृति के ये अंग उसकी सम्पूर्णता के लिए आवश्यक होते हैं ।

इस युग पर मुझे तरस भी आता है और हँसी भी । तरस इसलिए कि अपने अहंकार की तुष्टि के लिए ये कैसा भी काम कर सकते हैं । उस कार्य की परिणति पर विचार करना या शास्त्र निर्दिष्ट परिणामों पर सोचना उनको सहन नहीं हो रहा । वे समाज में अपनी विशिष्टता को स्थापित व पूजित होते देखना चाहते हैं । इस विद्या से वे सांसारिक भोगों का संग्रह करना चाहते हैं । हम यह क्यों भूल जाते हैं कि प्रकृति माँ की व्यवस्था में हमें भोजन, निवास और कामतुष्टि के साधन मिलेंगे अर्थात् जो विषय हमें हर देह में मिलते हैं, उनके लिए आतुर-अशान्त भाव से व्यग्र हैं और जो कार्य हम केवल इसी देह से कर सकते हैं उसे भूले हुए हैं । आत्म साधन, जगदम्बा की कृपा प्राप्ति जैसे विषय केवल नर देह में सुलभ हैं और इनको ही हम भूल जाते हैं । इस अज्ञानदर्प को लेकर हम जी रहे हैं, हम जीवन को पशुवत् पराधीन बनाने की मूर्खता करते जा रहे हैं ।

हँसी आने का कारण है कि अपने अहंकार का अशालीन प्रदर्शन करके हम पाना क्या चाहते हैं ? यहाँ का जो कुछ है—यहीं रहेगा, यहीं

का है, उसे हम समेट नहीं सकते फिर यह मोह क्यों पाल रहे हैं? अनेक लोगों के बड़े विनम्रतापूर्ण आग्रह आते हैं—“ऐसा कोई चमत्कार हम केवल इसलिए आयत्त कर लेना चाहते हैं कि इसे दिखाकर लोगों के मन में आस्था और इस विषय की प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहते हैं?” उन्हें कैसे समझाया जाय कि यह विषय ज्ञान का एक प्रखण्ड है और ज्ञान स्वप्रमाणित है, उसे आयत्त करना सभी के लिए सम्भव नहीं है। जो ज्ञान को अधिगत करने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं वे उसे परीक्षण-प्रदर्शन का विषय नहीं बनाते और जो लोभ एवं मोह ग्रस्त होने के कारण अपात्र हैं उन पर यह प्रकाशित नहीं होता।

कितनी कष्टकर बात है कि ‘तान्त्रिक’ शब्द टोने-टोटके या भूत-प्रेत साधक के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा। दुर्वासा, दत्तात्रेय जैसे परमोच्च साधक देशिकेन्द्र कहे जाते थे वहाँ तन्त्र से अनभिज्ञ लोग तान्त्रिक कहलाने लगे। परमहंस, अरविन्द, गोपीनाथ कविराज जैसी विभूतियों ने तन्त्र के ज्ञान मार्ग का ऐश्वर्य हमारे सामने प्रकट किया उसी तन्त्र को हम गर्हित विधा का प्रतीक बताने लगे।

यह आशय नहीं है कि तन्त्र में ये विषय नहीं हैं, हैं—पर ये ही तन्त्र नहीं हैं। किसी व्यक्ति के देहतन्त्र का सम्यक् निरूपण करते समय गुह्य और कुत्सित (विकारवाही) अंगों का विवेचन करना आवश्यक होता है वैसे ही सृष्टि के रहस्यों और शक्ति के रूप-स्तर का निर्वचन तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक उसके शोभन और अशोभन, गुप्त और प्रकट अंगों व क्रिया का विश्लेषण नहीं कर दिया जाता।

प्रेतादि की साधना करने की उत्कट आकांक्षा के पीछे प्रबल कारण है कि ऐसे लोग अपने जीवनो के क्रम में कभी प्रेत-पिशाच रहे हैं या उनकी साधना कर चुके हैं अन्यथा ऐसी आकांक्षा होती ही नहीं।

किंवदन्तियों में प्रेतों की अनेक चमत्कार कथाएँ प्रचलित हैं। इसमें भी कोई संशय नहीं कि इनमें शक्ति का एक विशिष्ट स्तर प्रकट हो जाता है, पंच तत्त्वों में स्थूल तत्त्वों (पृथिवी और जल) के विलुप्त हो जाने से बाधकता नहीं रहती परिणामतः दूरी और काल इनके लिए अवरोध नहीं रहते, इसके बावजूद भी ये भविष्यत् को नहीं देख सकते।

व्यक्तिगत रूप से इस विषय के प्रति कोई रुचि न रहते हुए भी एक-दो प्रयोग लिख रहा हूँ क्योंकि यह जनरुचि है और तन्त्र में इस प्रकार के प्रयोग दिए गए हैं। इसके बावजूद यह परामर्श अवश्य रहेगा

कि साहसी और धीर व्यक्ति को ही इन प्रयोगों में उतरना चाहिए। इस विद्या के जानकार व्यक्ति का संरक्षण मिल सके तो अति उत्तम।

शाबर पद्धति के प्रयोगों से जिस भूत-प्रेतादि का साधन किया जाता है उनसे अधिक शक्ति सम्पन्न एवम् कम क्षतिकर ये रूप हैं। नाम की समानता होते हुए भी ये साधक का अहित नहीं करती, हाँ इनके प्रकट होने के समय इनके मायाजाल में भ्रमित वा भयभीत नहीं हुआ जाए। एक तरह से ये यक्षिणी के निकट पहुंचने वाली अथवा उनके समान स्तर की शक्ति हैं। तन्त्र शास्त्र के अनुसार—

भूतिनि, कुण्डल धारिणी, सिन्दूरिणी, हारिणी, नटी, अतिनटी, चेटिका, कामेश्वरी, कुमारिका, ये नौ प्रकार की भूतिनियाँ हैं। इनमें नाम के अनुसार गुण हैं। इनके प्रभाव से व्यक्ति को दरिद्रता, अभाव और सामान्य कष्ट नहीं होते, इसके साथ ही ये रतिसुख का अपूर्व आस्वाद कराती हैं।

मन्त्र—ॐ हौं कूं कूं कूं कटु कटु ॐ अमुकं कूं कूं कूं ओं अः ॥

इस मन्त्र को द्वादशी (कृष्णपक्ष की हो तो अधिक अच्छा) से प्रारम्भ करके चतुर्दशी तक अथवा किसी भी शनिवार से प्रारम्भ करके सात दिन में आठ हजार जप चम्पा के पेड़ के नीचे बैठकर करने चाहिए। समय रात्रि का और माला रुद्राक्ष की रहे। जप करना एक तरह से इस मन्त्र का पुरश्चरण है। जप करने के पश्चात् अगले दिन भूतिनी का विस्तृत पूजन रात्रि में करना चाहिए। पूजन में सोलह शृंगार का सामान, पुष्पमाला, प्रसाद, दीपक तथा गुगल की धूप देकर रात में फिर मन्त्र का जप करना चाहिए। इस प्रकार करने पर भूतिनी प्रसन्न होकर प्रकट होती है।

इसके प्रकट होने पर गन्धोदक का अर्घ्य दे। अर्घ्य उस पानी को कहते हैं जो हाथ धोने के लिए दिया जाता है। यह जल सुगन्धित पदार्थों तथा कुंकुम युक्त होना चाहिए। अर्घ्य नैवेद्यादि अर्पित करने के बाद इसे माता, पत्नी या बहन के रूप में मान लिया जाना चाहिए। मातृ-रूपिणी होने पर यह वस्त्र, अलंकार और भोजन की कमी नहीं रहने देती। बहिन के रूप में वरण करने पर यह अत्यन्त रूपवती स्त्रियों को लाकर देती है तथा अनेक प्रकार के रस-रसायन प्रदान करती है जिससे व्यक्ति भोगक्षम एवं युवा बना रहता है। पत्नी के रूप में स्वीकार करने

पर यह अपनी पीठ पर चढ़ाकर स्वर्गादि लोकों को सैर कराती है, उत्तम भोजन, स्वर्णमुद्रा और रस-रसायन प्रदान करती है।

विशेष—भूतिनी का साधन करते समय मूलमन्त्र में अमुक के स्थान पर भूतिनी बोलना पड़ता है।

कुण्डलवती की साधना करने पर अमुक में कुण्डलवती बोलना चाहिए। इसकी साधना भी उपरिवर्णित विधि से ही की जाती है। इसको अपनी कनिष्ठा अंगुली का रक्त अर्घ्य के रूप में दिया जाता है। इसे माता के रूप में ही स्वीकार करना चाहिए। प्रसन्न होकर यह स्वर्णमुद्रा दिया करती है।

सिन्दूरिणी नामक भूतिनी की साधना करने पर मूलमन्त्र में अमुक के स्थान पर सिन्दूरिणी बोलना चाहिए। पूजा एवं अन्य विधि-विधान भूतिनी की तरह ही होगा किन्तु यह प्रयोग शून्य देवालय में किया जाएगा। जप संख्या भी आठ हजार ही रहेगी किन्तु यह जप ग्यारह दिन में सम्पन्न करके बारहवें दिन विशेष समारम्भ पूर्वक पूजन करके अर्घ्यादि अर्पित किया जाएगा। भूतिनी का यह स्वरूप पत्नी के रूप में ही स्वीकार किया जाना है। बारहवें दिन इसके प्रकट होने पर वचन कर लिया जाय फिर यह वस्त्र, धन और रस-रसायन प्रदान करती है जिससे व्यक्ति देह और धन के सुख भोगता है।

हारिणी नाम भूतिनी का प्रयोग शून्य शिव मन्दिर में किया जाता है। पूर्वोक्त विधि-विधान से इसका स्वागत-सत्कार करके पत्नी के रूप में वरण कर लेना चाहिए। इस प्रकार सिद्ध होने पर यह अन्न-वस्त्र, धन-धान्य की पूर्ति करती है और स्त्री-सुख देती रहती है।

नटी नामक भूतिनी की साधना वज्रपाणि (इन्द्र) के मन्दिर में जाकर करनी चाहिए। उस मन्दिर में नटी की प्रतिमा (चित्र) भोजपत्र अथवा कागज पर सिन्दूर से, चमेली की कलम बनाकर लाल कनेर के फूलों एवं अन्य उपकरणों से करनी चाहिए। आठ हजार जप करने के बाद इसके प्रकट होने के लिए विशेष पूजा करे, अर्घ्य के लिए लालचन्दन मिला हुआ सुगन्धित जल रखे। इसके प्रकट होने पर तथा प्रश्न करने पर दासी के रूप में साथ रहने का वचन ले लिया जाय। यह प्रतिदिन धन-वस्त्र-भोजनादि लाकर दे देगी। इसके दिए हुए को व्यय कर दिया जाय, घर में या संचित करके न रखा जाय।

महानटी भूतिनी की साधना अपेक्षाकृत कठिन है। नदी के संगम स्थल पर जाकर आठ हजार जप सात दिन में पूरे कर लें। आठवें दिन सूर्यास्त के पश्चात् विशेष पूजन प्रारम्भ करके मन्त्र जप करे (वैसे ये सारे प्रयोग एक प्रहर रात्रि बीतने पर ही प्रारम्भ किए जाते हैं) इसकी साधना सूर्यास्त के पश्चात् प्रारम्भ करके अर्धरात्रि पर्यन्त की जाती है। आठवें दिन अर्धरात्रि में यह महानटी प्रकट होती है और पत्नी के रूप में प्रस्तुत होती है। साधक को चाहिए कि उसे पत्नी के रूप में रहने का ही वचन दे। इस प्रकार सिद्ध हो जाने पर यह प्रत्येक रात्रि में आती है, रमण करती है और धन दिया करती है। शास्त्र के मतानुसार इसके दिए हुए धन को खर्च नहीं करता है तो यह आना बन्द कर देती है।

चेटी नामक भूतिनी गृहदासी का काम करती है। अपने घर के द्वार पर बैठकर इसके मन्त्र का आठ हजार जप तीन दिन में पूरा कर लें। कहने की आवश्यकता नहीं है कि मूल मन्त्र में अमुक के स्थान पर नटी शब्द बोल दिया जाएगा। कोई आश्चर्य नहीं कि तीसरे दिन ही यह प्रकट हो जाय अन्यथा चौथे दिन प्रकट हो जाती है और दासी के रूप में रहने का वचन ले लिया जाता है। सिद्ध होने पर यह घर का, खेत का सारा काम करती है—ऐसा शास्त्र में कहा गया है।

कामेश्वरी नामक भूतिनी की साधना देवी मन्दिर में की जाती है। अच्छा तो यह रहे कि किसी काली मन्दिर में यह की जाय। मछली और मांस से इसका पूजन करके रोज रात्रि में एक हजार जप करने चाहिए। सामान्यतया आठ हजार जप करने पर यह प्रकट हो जाती है कदाचित् ऐसा न हो सके तो जब तक यह प्रसन्न न हो, जप करते रहना चाहिए। प्रकट होने पर अर्घ्य पूजादि से सत्कार करके पत्नी के रूप में रहने का वचन ले लेना चाहिए।

कामेश्वरी भूतिनी की साधना करने के लिए मूलमन्त्र में अमुक के स्थान पर कामेश्वरी शब्द बोलना चाहिए। इसके लिए किसी देव-मन्दिर में जाकर सुन्दर शैय्या सजाये। उस पर सफेद चादर बिछाकर चमेली के फूल और सफेद चन्दन से कामेश्वरी का पूजन करे। यह पलंग नया रहे तो अधिक उत्तम। इस प्रकार प्रतिदिन नये फूल और चन्दन से पूजन करके आठ हजार जप करे। साधना सम्पूर्ण होने पर यह प्रकट होती है और प्रेयसी की तरह रति-सुख दिया करती है। पत्नी की तरह शैय्या सुख देने के साथ-साथ धन वैभव भी देती है। इससे प्राप्त धन से

मकान अथवा अन्य साधन जुटाये जा सकते हैं।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि नाम से ये सारी भूतिनियाँ कहलाती हैं किन्तु ये उस वर्ग में होकर भी शोषक नहीं हैं। साधक को भौतिक सुख और दरिद्रता नाश प्रदान करती हैं। सामान्य धारणा के अनुसार इनसे कोई हानि नहीं होनी चाहिए। दिखने को यह साधना सरल है किन्तु करने पर कठिन लगती है। यह आवश्यक नहीं कि मात्र आठ हजार जप करने पर ही यह सिद्ध हो जाय फिर भी जो व्यक्ति किसी भी संकल्प को लेकर चलता है, उसे सफलता मिलती ही है।

व्यक्तिगत रूप से आज से पहले मैंने न किसी को यह साधना कराई है, न मेरा इस विषय में कोई व्यावहारिक अनुभव है फिर भी इतना अवश्य जानता हूँ कि इनके दिए धन को रखना नहीं चाहिए। जब ये रोज दे देती हैं तो रखकर करना ही क्या है? दूसरे इनके सिद्ध हो जाने की बात किसी और से नहीं कहनी चाहिए। जिसके संरक्षण में सीख रहे हैं, उससे तो पर्दा करना नहीं है। इनके प्रकट होने के समय कुछ अन्य दृष्टान्त हो या भय उत्पन्न करने वाली घटनाएँ आभासित हों तो उनसे डरना नहीं चाहिए। इनके प्रकट होने पर वचन लेने-देने में कोई भी बात अस्पष्ट नहीं रहनी चाहिए।

डाकिनी सिद्धि

प्रकृति भेद से इनके नाम भेद हो जाते हैं। भूतिनी, प्रेतनी, पिशाचिनी, डाकिनी, शाकिनी, लाकिनी, हाकिनी ये उत्तरोत्तर अधिक उग्र और शक्ति सम्पन्न होती जाती है। इनमें अन्तिम चार की योगिनीपूजन में भी गणना होती है। यह तमोगुणी-स्तर है, राजसी-स्तर में यक्षिणी, किन्नरी, अप्सरा, नायिका, नटो, योगिनी, नागिनी की गणना होती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह स्तर भूतिनी से उग्र व सामर्थ्य में तीव्र होता है। यह जैसा कि नाम है, व्यक्ति का रक्षाकवच बना रहता है, शत्रुओं का विनाश करने में यह अमोघ मानी जाती है।

मन्त्र—डं डं डं ड्रों धूं धूं चालिनि मालिनी डाकिनि सर्व-सिद्धि प्रयच्छ हुं फट् स्वाहा।

विधि—इस मन्त्र का न्यास विनियोगादि नहीं है। सेमल के पेड़ पर चढ़कर हाथ ऊपर उठाए हुए जप करे। शास्त्र ने इसे सिद्ध होने में

लम्बा समय बताया है पर अनेक बार निर्दिष्ट समत से पहले ही सिद्ध हो जाता है।

भूत-प्रेत सिद्धि

मन्त्र—ओं ह्रीं क्रीं क्रीं क्लृं फट् फट् भट् भट् ह्रीं ह्रीं भूत-प्रेत भूतिनी प्रेतिनी आगच्छ आगच्छ ह्रीं ह्रीं ठः ठः ।

विधि—इसकी साधना करने वाले व्यक्ति को साधनाकाल में गंध (कुंकुम) मिला एवं चमेली के फूलों या इत्र से सुवासित जल पास में रखना चाहिए जिससे कभी यह प्रकट हो जाए तो उसे अर्घ्य देकर प्रसन्न कर दिया जाय।

बड़ के पेड़ के नीचे रात के समय इस मन्त्र के आठ हजार जप करने चाहिए तथा गूगल की धूप देनी चाहिए।



कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग

त्रिकाल दर्शन

बीते हुए तीन और आने वाले तीन जन्मों का विवरण जानने के लिए त्रिकाल दर्शन प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग पूर्ण हो जाने पर व्यक्ति अपने ही नहीं किसी के भी तीन जन्मान्तर देख लेता है। यद्यपि ये अनुष्ठान अति कठोर होते हैं किन्तु हो सकता है कोई वीर व्यक्ति बद्धपरिकर होकर इसे करने को तैयार हो जाए अथवा ये प्रयोग उद्धृत न करने से कहीं उपेक्षित ही न हो जाएँ यही सोचकर इनको इस संचय में जोड़ दिया गया है।

जहाँ कहीं पाँच पेड़ एकत्र उगे हों, वहाँ पाँच नरमुण्डों के ऊपर आसन लगाकर “ह्रीं ह्रीं ब्रूं सः” इस चतुरक्षर मन्त्र का जप तीन सप्ताह तक करें। तीन सप्ताह में इसके ४ लाख जप हो जाने चाहिए।

इस साधना को करते समय अनेक प्रकार के दृष्टान्त हुआ करते हैं। कई तरह के मायाचार होते हैं यदि साधक अविचल भाव से अनुष्ठान पूर्ण कर लेता है और उसे कोई देखता नहीं है तो त्रिकाल अथवा तीन जन्मान्तर देखने की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

द्रव्यशोधन

अनेक बार पुराने घरों की मरम्मत करते समय, कहीं बुनियाद खोदते समय कई बर्तन निकलते हैं। उन बर्तनों में कोयले या हड्डियाँ होती हैं। अनुभवी और व्यावहारिक लोग कहते हैं कि सोने के सिक्के कोयला और चाँदी के सिक्के हड्डी बन जाते हैं। इससे कोई विमति नहीं हो सकती कि कर्मचक्र में देह परिवर्तन होता रहता है, कर्म और विपाक में किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं होता इसलिए वह द्रव्य उसी व्यक्ति

को मूल रूप में दिखता है जो उसका अधिकारी है। उससे भिन्न को वह कोयले, हड्डो, बिच्छू के रूप में दिखने लगता है। इस प्रकार के प्रवाह के पीछे कोई शास्त्रीय आधार नहीं है, न शास्त्र यह मानता है कि द्रव्य का रूप परिवर्तन हो जाता है, न यह कहता है कि अधिकारी व्यक्ति को ही वह मिलता है शायद इसके पीछे यही एक मात्र कारण रहा हो कि भूमिगत धन को वे प्रयत्न व पुरुषार्थ का फल मानकर उसे प्राप्त करने का विधान रचते रहे हों।

संयोग वश यदि किसी के अनुभव में ऐसे प्रसंग आयें जहाँ कोयले आदि के रूप में कोई चीज किसी पुराने भूमिगत भांड में रखे मिलें, वहाँ यह प्रयोग करके देखना चाहिए।

मन्त्र—ओं ह्रीं त्रिपुटि त्रिपुटि कठ कठ आभिचारिक दोषं कीट-पतंगादिस्पृष्टदोषं क्रियादिदूषितं हन हन नाशय नाशय शोषय शोषय हुं फट् स्वाहा”।

विधि—प्रथम इस मन्त्र का दस हजार जप करके पुरश्चरण कर लें इसके पश्चात् कांजी के पानी को तांबे के बर्तन में रख कर एक हजार जप से अभिमंत्रित कर इस जल से उस द्रव्य को धो दिया जाए। अभिमंत्रित जल से धोने पर धन के दोष शान्त हो जाते हैं।

गुरु प्राप्ति

शास्त्रों में गुरु की महिमा अतुलनीय बताई है किन्तु उन शास्त्रों में ही गुरु का जो स्वरूप एवं गुण-लक्षण बताए हैं उनसे सम्पन्न व्यक्ति का मिलना आज के युग में असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य रहता है। हमारी देहयात्रा के पड़ाव में कभी न कभी तो गुरु की प्राप्ति हमें हुई ही होगी, न भी हुई हो तो गुरु परम्परा में जिन सिद्धों की गणना होती है उनमें से किसी के दर्शन होने का प्रयोग शास्त्र में बताया गया है—

जिस दिन मंगलवार को अमावस पड़ रही हो उस रात श्मशान में जाकर मन में गुरु की कल्पना करता हुआ उनकी मुद्रामयी पूजा करे फिर “ह्रीं हुं गुरो प्रसोद ह्रीं ओं” इस मन्त्र के दस हजार जप करे। जप करने के पश्चात् एकाग्र होकर गुरु का आवाहन एवं दर्शन करने की प्रबल इच्छा से प्रेरित होकर ध्यान करे। ऐसा करने पर गुरु के दर्शन हो जाते हैं। सम्भव हो तो उनसे अपने मन के प्रश्न एवं आकांक्षा भी निवेदित कर देने चाहिए।

खोये धन की प्राप्ति

यह प्रयोग विना मन्त्र का है तथा जिन औषधियों का प्रयोग बताया गया है उनको लाने का भी कोई विशेष दिन नहीं है इसलिए इस प्रयोग को करके देखा जाए।

चीता, तुरई, थूहर (डण्डा थूहर), सफेद आक, विष्णुकान्ता वच, पाठा, समालू और कडवी तुम्बी की जड़ समान भाग लें, इनमें नीम और नाग केसर के बीज मिलाकर धीरे-धीरे पीस लेवे। इस पिष्टी को दोनों पैरों के लेप करने से व्यक्ति को अपना खोया धन दिख जाता है।

विजयप्राप्ति

मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के दिन चिरचिटे की जड़ उखाड़ लाये। इसे भुजा या शिर पर धारण करने से विवाद या मुकदमें में विजय प्राप्त होती है। कहना नहीं होगा कि इस पौधे को पहले दिन निमन्त्रण देकर पूनम के दिन उसी विधि से खोदकर लाया जायेगा जो ऐसे प्रयोगों में सामान्यतया व्यवहृत होती है।

स्त्रियों का सौभाग्यकरण

मन्त्र—ओं ह्रीं कपालिनी कुलकुण्डलिनि मे सिद्धि देहि भाग्यं देहि देहि स्वाहा”

विधि—कृष्णपक्ष की चतुर्दशी से इस मन्त्र की दश माला रोज के क्रम से शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी पर्यन्त जप किया जाए। इस प्रकार करने से आदि-व्याधि शान्त होकर सौभाग्य वृद्धि होती है तथा सफलता प्राप्त होती है। ध्यान रहे—यह प्रयोग स्त्रियों के लिए हैं।

क्रोधप्रशमन

यदि किसी व्यक्ति के नाराज होने के कारण हमारे काम में बाधा पड़ रही है अथवा हानि हो रही है उसके क्रोध को कम करने के लिए “ह्रीं ठों ठों क्रोधप्रशमन ह्रीं ह्रीं हां क्लीं सः सः स्वाहा” पहले इस मन्त्र को एक हजार आठ बार बोलकर सिद्ध कर लिया जाए फिर जिस किसी व्यक्ति का क्रोध शान्त करना हा उसका चिन्तन करके यह मन्त्र

सात बार बोलकर अपने पहने हुए कपड़े में या रूमाल में एक गाँठ लगा ली जाए। रूमाल में गाँठ लगा दी जाय तो उसे हाथ में रखा जाए और फिर उस व्यक्ति के पास जाए जिसका क्रोध शान्त करना है।

आत्मरक्षा के लिए कवच

जिन लोगों को रात में बुरे स्वप्न आते हैं, दूसरे व्यक्तियों द्वारा जिनपर कुप्रयोग किये जाने का भय रहता है, प्रेत-पिशाचादि की पीड़ा का भय रहता है उनके लिए यह प्रयोग अच्छा परिणाम देने वाला होता है। इसको नित्यकर्म के रूप में मान लिया जाए तो उत्तम रहे वैसे भी एक हजार जप करने से यह सिद्ध हो जाता है फिर मात्र तीन या पाँच बार बोलने से यह काम करता है।

विधि—प्रयोग करने से पहले विनियोग करना चाहिए।

विनियोग—अस्य श्री भुवनेश्वरी कवचस्य महारुद्रो महेश्वरः ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः संसारनाशिनी देवता धर्मार्थकाम मोक्षप्राप्तये पाठे विनियोगः।

न्यास—महारुद्र महेश्वर ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे, संसार नाशिनी देवतायै नमः हृदये विनियोगाय नमः सर्वांगि।

कवच

ऐं क्लीं पातु शोर्षे मां शक्तिबीजं तथा हृदि ।
 हैं सौः पातु नाभिदेशे च सुन्दरी कण्ठदेशतः ॥
 महेश्वरी सर्वगात्रे कौमारी दक्षिणे तथा ।
 वैष्णवी पूर्वतः पातु उत्तरे सर्वमंगला ॥
 पश्चिमे पातु वाराही इन्द्राणी पातु नैऋते ।
 शून्येऽनलेऽनिले क्षेत्रे सर्वत्र भुवनेश्वरी ॥

मूल कवच इतना ही है। फलश्रुति में कहा गया है—

इदं तु कवचं पुण्यं धारणात् श्रवणादपि ।
 न दुःस्वप्नों भवेत्तस्य न विभीषिकदर्शनम् ॥
 दूषितज्वरभीतिश्च न च पीडकपीडनम् ।
 संक्रामकव्याधिभयं कदापि च न जायते ॥
 अपस्मारादिरोगाणां वायून्मादादिनामपि ।
 स्त्री रोगाणां चैव देवेशि नाशनं कवचोत्तमम् ॥

पिशाच डाकिनी भूत दृष्टि दोषापहारकम् ।
 बाणभयं वज्रभयं हिंस्रजन्तुभयं तथा ॥
 जलजन्तु भयं चैव क्षिप्रं नाशयते ध्रुवम् ॥

विशेष—मूल कवच को केसर चन्दन से अनार या चमेली की कलम से भोजपत्र पर लिखकर गंध-पुष्पादि से पूजन करके सामने रखकर एक हजार बार पाठ करें । और इसे किसी ताबीज में रखकर धारण कर ले या किसी को धारण करने के लिए दे दे तो फलश्रुति में लिखे लाभ मिल जाते हैं ।

बच्चों के रोने पर

कई बार छोटे बच्चे रोने के अभ्यस्त हो जाते हैं । उनके रोने के कई कारण होते हैं जिनका अनुमान ही हम कर पाते हैं । जो बालक शारीरिक व्याधि के कारण रोते हैं, उनका उपचार चिकित्सक से कराना चाहिए किन्तु जो बालक बिना किसी दृश्य कारण के रोते हैं उनके लिए यह प्रयोग करना चाहिए—“**रूं देवी चण्डिका पातु ह्लीं ह्लीं शाकिनी डाकिनी द्रौं द्रौं हूं फट् सँवर सँवर**” इस मन्त्र का पुरश्चरण करके सिद्ध कर लिया जाए तो उत्तम रहे अन्यथा ऊपर वाले प्रयोग की विधि से भोजपत्र पर लिखकर उसे सामने रख एक हजार आठ बार यह मन्त्र पढ़कर बालक के गले में पहना दें । इसके प्रभाव से बालक रोना बन्द कर स्वस्थ हो जाता है ।

किसी के किये हुए की काट

व्यक्तिगत रूप से मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि कोई व्यक्ति किसी पर अभिचार कर्म करता है क्योंकि यह विद्या पढ़ने और प्राप्त कर लेने के बाद कोई भी व्यक्ति इतना नहीं गिर सकता कि वह किसी का अहित करे फिर भी व्यवहार में देखने में आया है कि लोग ऐसा करते हैं । इस प्रकार के कुत्सित प्रयोगों की शान्ति के लिए—“**ओं सँ सां सिं सीं सुं सूं सें सैं सों सौं सं सः वं वां विं वीं वुं वूं वों वौं वं वः हं सः अमृत वर्चसे स्वाहा ।**”

विधि—मिट्टी की सराई या शकोरे में पानी भरकर इस मन्त्र की पाँच माला जपकर किसी चौराहे में या पीपल में डाल आये ।

गड़ा धन

कीमीयागीरी (सोना बनाना) और गड़े धन का मोह बहुत भयंकर होता है। जिन लोगों के यह लग जाता है उनका आराम हराम हो जाता है। यह लोभ न जाने कितना घुमाता है, कितना धन खर्च कराता है। अनेक लोग शान्त घर में इस प्रकार का लोभलोष्ठ फँक कर अशान्ति उत्पन्न कर देते हैं। तुम्हारे घर में माया दब रही है—यह एक वाक्य हमारे मन में छुपे लोभ—पिशाच को जगा देता है और फिर प्रारंभ होता है—यातना का दौर जिसे भोगकर भी हम समझ नहीं पाते, उबते नहीं, पछताते भी नहीं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पदार्थ उतना ही है और इसी धरती माता के पास है। हमारे पूर्व पुरुषों ने जितना संचित किया वह यहीं छोड़ गए। राजा महाराजे, सेठ-सामन्त अपना धन इसी धरती माता को सौंप गए वह कहाँ है—यह जान लेना कठिन है। जहाँ अधिक मात्रा में धन रखा गया, उसका सांकेतिक भाषा में ताम्रपत्र पर विवरण लिखाकर सुरक्षित रख दिया गया इनको बीजक कहते हैं। इस अपार द्रव्य को रखने का उनका तरीका भी विचित्र था। एक बीजक में लिखा गया था—अमुक किले की उत्तर दिशा वाली बुर्ज की छाँह अक्षय तृतीया के दिन मध्याह्न में जहाँ पड़ती है वहाँ इतना द्रव्य रखा गया है तो दूसरे बीजक में लिखा गया—‘काया काची मस्तक साँचा’ जिसका अर्थ होता था—अमुक स्थान पर प्रातःकाल सूर्योदय के समय (मकर संक्रान्ति के दिन) खड़े होने पर मस्तक-छाँह जिस दीवार पर पड़ती है उसके आगे मनुष्य की दूरी पर खोदने से धनागार का द्वार है।

ऐसे नगर भी, बस्तियाँ भी मिल जायेंगी जो किसी जमाने में सम्पन्न एवं विकसित नगर थे। पुराने जमाने के मोटी तह के मिट्टी के

बर्तन लम्बे चौड़े क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं, जिस वक्त ने उन पर धूल का टीला चढ़ा दिया था वही वक्त उस धूल के कण-कण करके उड़ाता जा रहा है। वहीं आज भी अनेक लोगों को चाँदी या सोने के सिक्के मिल जाते हैं। कई जगह बनजारों का रखा पिपुल धन बहुत सुरक्षित रूप में कुओं या बावड़ी में रखा हुआ बताते हैं। पेड़ों की जड़ में किसी देवता की मूर्ति स्थापित किये गए पुराने चबूतरे में या ऐसे ही किसी अन्य स्थान में रखी हमारे पूर्वजों की सम्पदा हमारी प्रतीक्षा कर रही है।

इस माया का भी विचित्र स्वभाव है। एक बार एक व्यक्ति अपने मकान के सामने गड़े धन को खोद रहा था। घड़े के ऊपर करी रखी हुई थी। करी में रखे हुए रुपये तो उसने जेब में रख लिए किन्तु जैसे ही घड़े को निकालने लगा कि किसी के आने की आहट सुनकर रुक गया। दूर से आते आदमी को देख उसने मिट्टी से बूर दिया। अगले दिन जब खोदने लगा तो घड़ा आगे खिसकने लगा। वह खोदता गया और घड़ा खिसकता गया। आज पता नहीं वह किस तरफ कितना खिसक चुका है।

दूसरा किस्सा है तीरथराम का। गर्मी की दोपहर में वह तालाब में हाथ-पाँव धो रहा था कि उसे रुपये हाथ में आ गए। दो तीन बार हाथ में आये उनको जेब में रख लिया किन्तु जब आते ही गए तो उसने उनको निकालकर ढेर लगाना शुरू कर दिया। वह उन्हें निकालने में मशगूल था कि इतनी ही देर में एक अन्य व्यक्ति वहाँ आ गया। उसने पूछा क्या कर रहा है इन ठीकरियों का क्या करेगा ? और उसने रुपयों का जो ढेर इकट्ठा किया था वह ठीकरी बन चुका था। उसने ठीकरियों को वापस तालाब के हवाले कर दिया। वे रुपये जो उसकी जेब में थे, इस घटना की स्मृति के रूप में आज भी उसके पास हैं।

एक कस्बे में एक पुरानी हवेली है। उसके बीजक में लिखा है : 'कुएँ के ढाणे में पचास हजार मुहरें हैं।' वहाँ कुएँ के ढाणे को कइयों ने खोदा, पर कुछ नहीं मिला। एक दिन हवेली की छत पर बैठा एक आदमी पिछवाड़े में देख रहा था। वहाँ एक नकली छोटा-सा ढाणा बना हुआ था। वह सोचने लगा यही वह ढाणा है। इतनी ही देर में उसकी निगाह सीढ़ियों की तरफ गई। देखा एक विशाल भुजंग सीढ़ियों में

चढ़ता हुआ ऊपर आ रहा है। उसे देख वह भयभीत हो गया। उससे हाथ जोड़ माफी मांगते हुए कहा—महाराज ! इसमें से एक भी मुहर नहीं चाहिए। मुझे माफ कर दीजिए, आयन्दा इधर देखूंगा भी नहीं। कई बार इस प्रकार प्रार्थना करने पर वह वापस नीचे उतरा।

एक रात सजना राम घर से अपने खेत में जा रहा था रास्ते में एक घड़ा पड़ा हुआ था। उसने सोचा कोई चोर चुराकर लाया है और आने की आहट सुनकर भाग गया है। हो सकता है, इधर-उधर छुपा हो और मैं उठाकर ले जाऊँ तो अकेला देखकर मुझ पर हमला कर दे। चुपचाप वह घर आता है और अपने भाई को सारी बात बताकर साथ ले जाता है। वापस उस जगह आता है तो न घड़ा मिलता है, न किसी आदमी के पैरों के चिह्न मिलते हैं।

गोवा से एक व्यक्ति आता है, वह कहता है एक अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति के घर में द्रव्य का पूरा मकान गड़ा हुआ है। उसे बरामद करने के लिए एक तांत्रिक को लाया गया। उसने अपना पूजा-पाठ प्रारम्भ कर दिया। तीसरे दिन वह अपने स्थान से दस फीट ऊपर उठा और नीचे गिरा, गिरते ही उसके शरीर के चिथड़े उड़ गए। इसके बाद दूसरे व्यक्ति को लाया गया। उसने कहा—“मैं दिखा सकता हूँ दिला नहीं सकता।” उसने अभिमन्त्रित उड़द फेंके। थोड़ी देर में एक सफेद सर्प आया, उसे लकड़ी से उठाकर उस जगह को बजाया। वह स्थान ऐसे बजा जैसे वह कोई बड़ा कमरा हो।

निधि ग्रहण का विधान

यद्यपि यह विधान तकनीकी है और मैं अपनी तरफ से इसे सुगम बनाने में कोई कसर छोड़ने की बात भी नहीं रखूंगा तदपि इसमें सावधानी रखना अत्यन्त आवश्यक है। इन प्रकरणों में अनेक प्रकार के संकट आते हैं फिर भी यदि अच्छी मात्रा में सम्पत्ति है तो यह विधि-विधान करके उसे हस्तगत करने में कोई आपत्ति नहीं है।

जितनी बड़ी मात्रा में निधि होगी, उसकी सुरक्षा व्यवस्था भी उतनी ही कठोर होगी इसलिए अपने साथ तीन, पाँच, सात व्यक्ति सहायक के रूप में ले जाए, इन सहायकों को तलवार से सज्जित कर

देना चाहिए। ऐसे विषयों में सर्प के सिवा कोई देहधारी नहीं होगा प्रेतादि के स्थूलदेह न होने से तलवार का प्रयोग करने की नौबत नहीं आयेगी फिर भी तलवार एक ऐसा शस्त्र है जो प्रेतलोक को भी भयभीत करता है।

इस कार्य के लिए आषाढ़, मार्गशीर्ष और पौष के महीने अनुकूल रहते हैं। शनिवार, मंगलवार और रविवार जैसे क्रूर वार वर्जित होते हैं। भद्रा और व्यतीपात भी छोड़ देने चाहिए। नक्षत्रों में—अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तरा भाद्रपदा, पूर्वा भाद्रपदा, श्रवण धनिष्ठा और रेवती नक्षत्र अनुकूल रहते हैं।

कार्य करने वाले व्यक्ति का नाम राशि से चौथा, छठा, आठवाँ और बारहवाँ चन्द्रमा न रहे।

इस प्रकार पंचांग शुद्धि करके चावल से एक चतुष्कोण के भीतर आठ पत्रों वाला एक कमल का मण्डल बनावे। यह मण्डल किसी काठ के पट्टे पर सफेद कपड़ा बिछाकर उसपर बनावे। इस मण्डल (अष्टदल कमल) के मध्य में एक मिट्टी का या ताँबे का घड़ा भरकर रख दे। इसमें शक्ति सहित शिव का पूजन करें।

ध्यान रखने की बात है कि इस सारे प्रकरण में शिव ही अधिष्ठाता देवता होते हैं। शिव का ध्यान करके “ओम् नमो भगवते ईशानाय श्वाधिपतये आगच्छागच्छ बलि गृहाण नमो विच्चे स्वाहा”—इस मन्त्र से पूजन करे। अन्य उपचार समर्पण करते समय बलि शब्द के स्थान पर उन-उन उपचारों का नाम ले ले। जैसे—पुष्पं, धूपं, गन्धं, दीपं नैवेद्य के स्थान पर बलि अर्पित की जाएगी फिर शिवा का पूजन सामान्य विधि से कर लेना चाहिए।

इस पूजन के पश्चात् आठ कमल पत्रों में अपने सामने वाले पत्र से प्रारम्भ करके अपने दाहिने हाथ की तरफ जा रहे पत्रों के क्रम से पूजन क्रमशः करनी चाहिए इनके क्रमशः मन्त्र हैं—पूर्व पत्र में “ओम् नमो ब्राह्म्यै ब्राह्म्यै आगच्छागच्छ बलि गृहाण गृहाण नमो विच्चे स्वाहा” दाहिने हाथ की तरफ बढ़ते हुए आग्नेय दिशा के कोण में “ओम् नमो माहेश्वर्यै आगच्छागच्छ बलि गृहण गृहाण नमो विच्चे स्वाहा” अगले दक्षिण दिशा वाले पत्र में “ओम् नमो कौमार्यै आगच्छागच्छ बलि गृहाण गृहाण नमो विच्चे स्वाहा” नैऋत्य कोण के पत्र में साधक के

सामने रचे मण्डल में यह आग्नेय कोण का पत्र रहेगा। “ओम् नमो वैष्णव्ये आगच्छागच्छ बलि गृहाण गृहाण नमो विच्चे स्वाहा” पश्चिम के पत्र में “ओम् नमो वाराह्ये आगच्छागच्छ बलि गृहाण गृहाण नमो विच्चे स्वाहा” वायव्य कोण में सामने बनाये मण्डल में यह ईशान कोण वाला पत्र होगा। “ओम् नमो इन्द्राण्ये आगच्छागच्छ बलि गृहाण गृहाण नमो विच्चे स्वाहा” उत्तर में “ओम् नमो नारसिह्ये आगच्छागच्छ बलि गृहाण गृहाण नमो विच्चे स्वाहा” ईशान कोण में (यह सामने बांये हाथ की तरह वाला पत्र होगा) “ओम् नमो चामुण्डायै आगच्छागच्छ बलि गृहाण गृहाण नमो विच्चे स्वाहा” मन्त्र से पूजन करे।

यह पूजन विस्तार से करना चाहे तो इन पत्रों में क्रमशः ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, नारसिही और चामुण्डा के नाम से पाद्य, अर्घ्य, स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप अर्पित करके नैवेद्य के समय ऊपर लिखा मन्त्र बोल देना चाहिए।

इनमें पूजन करके चतुष्कोण में इन्द्रादि दश दिक्पालों की और उनके आयुधों की पूजा करे। पूजन का वही मन्त्र रहेगा केवल नाम बदलते जायेंगे। पूजन का मन्त्र इस प्रकार होगा—“ओम् नमो इन्द्राय आगच्छागच्छ बलि गृहाण गृहाण नमो विच्चे स्वाहा” आगे के मन्त्रों में अग्नये, यमाय, निऋतये, वरुणाय, वायवे, कुबेराय, ईशानाय, (ये आठ दिशाओं में नौवाँ सामने वाले और दसवाँ बिल्कुल सामने वाले स्थान पर) ब्रह्मणे, अनन्ताय शब्द बोलने चाहिएँ।

इन्हीं स्थानों पर इनके आयुधों का पूजन करे। यहाँ पूजन इस चतुष्कोण के भीतर की तरफ करनी चाहिए। पूर्व में वज्राय शक्तये, दण्डाय, खड्गाय, पाशाय, अंकुशाय, गदायै, त्रिशूलाय, पद्मे, चक्राय पद बोलना होगा।

यह पूजन चतुष्कोण में भीतर की तरफ करे। बाहर की तरफ उसी क्रम से, पूर्व दिशा द्वार में नन्दी श्री की, दक्षिण द्वार में कीर्ति-महाकाल की, पश्चिम द्वार में गणेशकुमार की और उत्तर द्वार में दण्डी भृंगी का पूजन करे। मन्त्र—“ओम् नमो नन्दी श्रीभ्यां आगच्छागच्छ बलि गृहाण गृहाण नमो विच्चे स्वाहा” रहेगा। आगे के मन्त्रों में कीर्तिमहाकालाभ्यां, गणेशकुमाराभ्यां, दण्डीभृंगीभ्यां पद बोले जाएँगे।

बलि समर्पण से पूर्व ऊपर लिखा गया मन्त्र पढ़ें और अर्पित करने के वक्त “ओं बलि सुबलि नृत्यन्तु सिद्धि मां दिशन्तु ओं नमो

विच्चे स्वाहा” यह मन्त्र सर्वत्र बोलना है। बलि में दही, सिन्दूर लगे उड़द, पूये और पूड़ी देनी होगी।

इस प्रकार पूजन करने के बाद उस पूजित घड़े के जल से स्वयं और सहायकों को स्नान कराये। स्नान कराने का मन्त्र है—“ओं नमो अर्भटे पिंगलोदराय पापं नाशाय-नाशय दुराचारं हन हन अभिविक्तान रक्ष रक्ष अभिवेकपदम् उपधारय उपधारय कुरु कुरु समर समर भीषणे नमो विच्चे वौषट्”।

□

आपको इस पुस्तक को पढ़ने पर कैसा लगा ?

आपके सुझाव हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। इससे भविष्य में हम आपको अधिक सेवा कर सकेंगे। यदि आप चाहते हैं कि हमारे प्रकाशनों की तथा देश-विदेश के ज्योतिष, तन्त्र, मंत्र, योग, अध्यात्म के मौलिक एवं महत्वपूर्ण प्रकाशनों की सूचना नियमित रूप से आपके पास पहुँचती रहे तो हमें एक कार्ड पर अपना पता लिख भेजिये। साथ ही यह भी कि भविष्य में आप किस विषय की पुस्तक पढ़ना चाहते हैं। उस विषय की उत्तम संग्रहणीय, विश्वस्त सामग्री का चयन हमारा काम, वह भी बिल्कुल आपकी पसन्द के अनुरूप :



मेघ प्रकाशन

दिल्ली-110006

हमारे महत्वपूर्ण संग्रहणीय प्रकाशन

1. तंत्र दर्शन	पं. गोविन्द शास्त्री	200.00 रु.
2. साधना और संस्कार	पं. गोविन्द शास्त्री	150.00 रु.
3. प्रायोगिक तंत्र	पं. गोविन्द शास्त्री	100.00 रु.
4. अंकदर्शन	पं. गोविन्द शास्त्री	60.00 रु.
5. तंत्र विद्या का यथार्थ	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	200.00 रु.
6. आपका हाथ-आपका सच्चा मित्र	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	125.00 रु.
7. द्वादश भाव रहस्य	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	80.00 रु.
8. शनि : कब शुभ-कब अशुभ	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	100.00 रु.
9. मंगल : कब शुभ-कब अशुभ	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	80.00 रु.
10. राहु-केतु : कब शुभ-कब अशुभ	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	60.00 रु.
11. ग्रहों का काम-भाव पर प्रभाव	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	95.00 रु.
12. रत्न प्रश्नोत्तरी	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	150.00 रु.
13. ज्योतिष कोमुदी (नक्षत्र खंड)	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	200.00 रु.
14. अंकोदया (अंक-ज्योतिष)	इंजी. हरीश श्रीवास्तव	70.00 रु.
15. श्री बटुक भैरव साधना	डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी	100.00 रु.
16. भूतविद्या (अदृश्य रहस्यों की कुंजी)	डॉ. एम. यू. बहादुर	100.00 रु.
17. पुत्र प्राप्ति के अचूक उपाय	डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद वर्मा	40.00 रु.
18. श्री महामृत्युंजय पूजा विधान	आचार्य अशोक सहजानन्द	100.00 रु.
19. ग्रह शांति दीपिका	आचार्य अशोक सहजानन्द	200.00 रु.
20. आपकी समस्या-हमारा समाधान (सैट)	आचार्य अशोक सहजानन्द	200.00 रु.
21. दुर्गा सप्तशती वैभवम्	आचार्य अशोक सहजानन्द	200.00 रु.
22. वास्तुशास्त्र, फेंगशुई, पिरामिड सार-संग्रह	आचार्य अशोक सहजानन्द	150.00 रु.
23. सिद्ध मंत्र संग्रह	आचार्य अशोक सहजानन्द	150.00 रु.
24. महामंत्र णमोकारः वैज्ञानिक अन्वेषण	डॉ. आर. के. जैन	100.00 रु.
25. आत्मा का वैभव	दर्शन लाड	100.00 रु.
26. पाणसायर (ज्ञान सागर) सैट	कुसुम जैन	300.00 रु.
27. अरिहंत पूजाजलि	कुसुम जैन	45.00 रु.
28. पूजन पाठ सार्थ	कुसुम जैन	12.00 रु.
29. जैन गीता	आचार्य विद्यासागर	20.00 रु.
30. इतिहास के अनावृत पृष्ठ	आचार्य सुशील कुमार	20.00 रु.
31. गोविन्द उवाच	मध्यम पुरुष	20.00 रु.
32. संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास	डॉ. जे. पी. खंडेलवाल	300.00 रु.
33. वैदिक साहित्य : नवमूल्यांकन	डॉ. रसिक विहारी जोशी	450.00 रु.
34. संस्कृत-प्राकृत का समानांतर अध्ययन	डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव	200.00 रु.
35. त्रिषष्टिशालाका पुरुष चरितम्	आचार्य हेमचंद्र	650.00 रु.

36. सहजानंद वर्णी और उनकी संस्कृत रचनाएं	कुसुम जैन	450.00 रु.
37. सप्तसंधान महाकाव्य : समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. श्रेयांस कुमार	300.00 रु.
38. आयुर्वेद द्वारा संपूर्ण स्वास्थ्य	डॉ. गोविंद उपाध्याय	150.00 रु.
39. स्वास्थ्य और सौंदर्य रक्षा	डॉ. कोमलचंद्र	60.00 रु.
40. सफलता-असफलता/चुनाव आपका	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	40.00 रु.
41. इंटरव्यू में सफलता कैसे?	निधि आर. लाल	40.00 रु.
42. विश्व साहित्य की झांकियां	डॉ. जगदीश चंद्र जैन	200.00 रु.
43. मध्यप्रदेश के प्राचीन कीर्तिस्थल	डॉ. रामनारायण 'मधुर'	200.00 रु.
44. भारतीय संस्कृति और कला के विविध आयाम	डॉ. रामनारायण 'मधुर'	100.00 रु.
45. सार्थक समाधान क्यों नहीं?	गंगा प्रसाद मिश्र	80.00 रु.
46. अयोध्या की ओर (संस्मरण)	द्वारका लाल 'गुप्त'	80.00 रु.
47. Jaina Astronomy	Dr. S.S. Lishk	Rs. 400.00
48. Secrets of Face Reading	Dr. S.S. Lishk	Rs. 20.00
49. Astrological Talks	Dr. S.S. Lishk	Rs. 30.00
50. Tao of Jain Sciences	Prof. L.C. Jain	Rs. 500.00
51. Meru Temples of Angkour	Dr. J.D. Jain	Rs. 200.00
52. Ancient Geography of Ayodhya	Dr. S.N. Pandey	Rs. 200.00
53. Introduction to Mythology	L. Spence	Rs. 400.00
54. Jain & Hindu Logic: Comparative Study	Dr. P.K. Jain	Rs. 400.00
55. Jaina way of Life	Dr. P.K. Jain	Rs. 350.00
56. Ancient Republic of Bharat	Dr. R.C. Jain	Rs. 450.00
57. Daulatram's Chhahdhala (Jain Bible)	Dr. S.C. Jain	Rs. 70.00
58. Yogindu's Yogsaar	Dasrath Jain	Rs. 200.00
59. Prominent Jaina Eulogies	Dasrath Jain	Rs. 600.00
60. Enhance Your Word- Power	Anvita Agarwal	Rs. 80.00

आवश्यक सूचना

प्रत्येक आर्डर पर अपना नाम व पूरा पता पिन कोड के साथ लिखना न भूलें। पुस्तकें पूरा मूल्य अग्रिम प्राप्त होने पर ही भेजी जाती हैं। 200 रु. से कम के आदेश पर रु. 20 रु. डाक शुल्क मिलाकर भेजें। पुस्तकें रजिस्टर्ड डाक से भेजी जायेगी। ज्योतिष, तंत्र-मंत्र-यंत्र के अनेकों दुर्लभ ग्रंथ, फोटोस्टेट रूप में उपलब्ध कराये जा सकते हैं। आपको किसी भी पुस्तक की आवश्यकता हो, हमें सूचित करो। हमारे यहां अनेक प्रकाशकों की पुस्तकों का बहुत बड़ा स्टॉक उपलब्ध रहता है। इसके अतिरिक्त हमारे यहां से सभी प्रकार के यंत्र, मालाएं, पूजन सामग्री, ऋद्धि-सिद्धि देने वाली प्रभावशाली वस्तुएं, फेंगशुई एवं पिरामिड, रत्न आदि उपलब्ध कराये जा सकते हैं। विस्तृत सूचनार्थ लिखें-

मेघ प्रकाशन

239, दरीबा कलां, दिल्ली-110006 ● दूरभाष : 23278761, 55278761



आप भी अनुभव कर रहे होंगे, हमारा जीवन असुरक्षित होता जा रहा है, दानवी क्रूरता ने भय का पाश-जाल बिछा दिया है, जिसमें प्रत्येक जन उलझ-फंस गया है। हमारी आत्मरति परहंता की सीमा तक विकृत हो चुकी है, व्यक्ति मन से निर्बल और तन से निःसत्व होकर ऐसा जीवन जी रहा है जो उसकी विवशता अथवा मृत्यु की प्रतीक्षा मात्र बन गया है।

इसका कारण है?

- हमारा आस्थाहीन जीवन दर्शन
- मूल्यहीन सामाजिक चेतना
- नीतिशून्य राजनतिक चरित्र
- लक्ष्यहीन शिक्षा

और इनके समाधान/सफल मार्गदर्शन के प्रतीक रूप में

सहज-आनन्द (पत्रिका)

सहज-आनन्द ?

- एक विचार यज्ञ है, जिसके सुवासित धूम से आपका मन-मंदिर-सा पवित्र हो जाएगा।
- एक शुभ संकल्प है जो समाज को आस्थायान बनाएगा।
- एक इन्द्रधनुषी स्वप्न है जिसका प्रत्येक रंग आपको सहज विश्वास से अनुप्राणित व उल्लसित करता रहेगा।
- एक सुदृढ़ प्रयास है जो भौतिक विज्ञान की चमक से हतप्रभ होते जा रहे देशीय गौरव को भास्वर रूप में स्थापित कर सकेगा।
- परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए रूचि सम्पन्न ज्ञानवर्द्धक, मनोरंजक, पठनीय सामग्री से परिपूर्ण एक सम्पूर्ण पत्रिका।

12 अंक - 300 रु.

आजीवन - 2100 रु.

प्राप्ति स्थान :

मेघ प्रकाशन

239, दरीवाकलां, दिल्ली-110006

दूरभाष - 23278761, 55278761

ई-मेल : [megh-prakashan @ rediffmail.com](mailto:megh-prakashan@rediffmail.com)